कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

आधुनिक व्रज भाषा-काव्य

[आधुनिक व्रज-भाषा की मौलिक रचनाओं का संग्रह]

(प्रयाग विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा की पाठ्य-पुस्तक)

सम्पादक

रायबहादुर, पंडित शुकदेवबिहारी मिश्र,
बी. ए., एल-एल बी.

डाक्टर रामशंकर शुक्ल रसाल, एम. ए., डी. लिट.

प्रकाशक
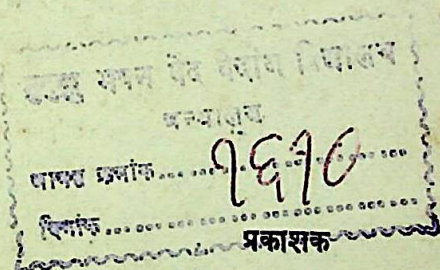
सरस्वती प्रकाशन मन्दिर

इलाहाबाद

द्वितीय बार] २००२ [मूल्य २)

मुद्रक—सुशीलचन्द्र वर्मा
सरस्वती प्रेस,
जार्जटाउन, इलाहाबाद
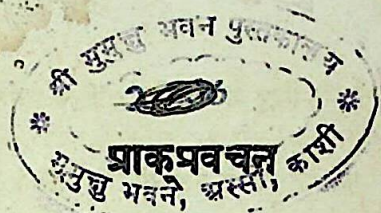
आधुनिक हिन्दी-काव्य का अत्यभिराम आराम वस्तुतः दो विभिन्न विभागों में विभक्त है। प्रथम विभाग तो महाभाग व्रजभाषा का काव्य-कुंज-पुंज है और द्वितीय नवोदीयमान खड़ी-बोली का वह काव्य-कानन है, जिसमें कियत काल से ही कलाकारों ने रम्य रचना का श्रीगणेश किया है और अभी केवल कुछ ही नव्य-भव्य काव्य-द्रुम रमाये और जमाये हैं।

प्रथम विभाग के भी स्थूल रूप से दो उप-विभाग किये जा सकते हैं। एक तो प्राचीन-परिपाटी के ही सर्वथा समीचीन सा है और दूसरा कुछ अर्वाचीन विशेषताओं का अपने रंग-ढंग से आभास लिये हुए नवीन। दोनों विभागों में आर्य कार्य हो रहा है, दोनों में सुन्दर सुमनों का विकाश-प्रकाश है और दोनों में अपनी-अपनी रुचिर रोचकता है।

साधारणतया हम व्रज-भाषा के इस काव्योपवन को आधुनिक व्रज-भाषा-साहित्य कह सकते हैं। साथ ही इसका प्रस्फुटन-प्रारम्भ स्थूल रूप से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पश्चात् से ही मान सकते हैं। अतएव कहना चाहिए कि अभी केवल अर्ध शताब्दी का ही समय इसके प्रारम्भ-प्रसार को हुआ है। इन ५० वर्षों के समय को हम दो मुख्य भागों में इस प्रकार रख सकते हैं:—

पूर्वार्ध-काल—जो स्थूलतया संवत् १६४७ (सन् १८६०) से संवत् १६७२ (सन् १६१५) तक आता है।

उत्तरार्ध-काल—जो लगभग संवत् १६७२ (सन् १६१५) से संवत् १६६६ (सन् १६४२) या आज तक आता है।

यद्यपि यह सत्य है कि भारतेन्दु बाबू के ही समय से इस आधुनिक व्रज-भाषा-काव्य का अथ होता है, तथापि इस संग्रह में उन्हें इसलिए छोड़ दिया गया है कि स्वर्गीय पंडित रामचन्द्र शुक्ल तथा रत्नराजा

डाक्टर श्यामविहारी जी मिश्र जैसे हमारे साहित्य-मर्मज्ञों तथा आलोचकों ने उन्हें प्राचीन ब्रज-भाषा का अन्तिम महाकवि मान रक्खा है। 'हिन्दी नवरत्न' से यह बात सर्वथा स्पष्ट सी हो जाती है। ऐसी दशा में इस आधुनिक ब्रजभाषा-काव्य का प्रारम्भिक सुकवि हमने भारतेन्दु के ही समकालीन तथा परमप्रिय मित्र पंडित बदरीनारायण जी चौधरी 'प्रेमघन' को माना है और इस संग्रह में उन्हें सबसे प्रथम स्थान दे रक्खा है। 'प्रेमघन' जी भारतेन्दु बाबू से केवल ५ वर्ष ही छोटे थे। इस प्रकार वे ही उनके पश्चात् आते हैं।

भारतेन्दु बाबू की रचनाओं से यह स्पष्ट है कि वे सत्काव्य के लिए ब्रज-भाषा को ही अधिक उपयुक्त समझते थे। उनकी सभी सुन्दर, सरस और उत्कृष्ट रचनाएँ ब्रज-भाषा में ही हैं। हाँ साधारण रचनाएँ—नाटक आदि में—खड़ी बोली में हैं। इससे यही ज्ञात होता है कि उनके विचार से ब्रजभाषा ही सत्काव्य के लिए उपयुक्त है। उनका यह विचार उस समय सर्वथा समीचीन भी था; क्योंकि उस समय तक ब्रजभाषा ही सत्काव्य-साहित्य की एक मात्र सर्वमान्य व्यापक भाषा थी। खड़ी बोली का काव्य-क्षेत्र में वस्तुतः सच्चा संचार भारतेन्दु बाबू ने ही किया है और उसकी ओर सुकवियों का ध्यान स्वयमेव पथ-प्रदर्शन कराते हुए उन्हीं ने आकर्षित किया है। उनसे ही प्रभावित होकर उनकी मित्र-मंडली के कतिपय कविवरों ने खड़ी बोली में भी रचनाएँ कीं और इस प्रकार खड़ी बोली को काव्य के क्षेत्र में आगे बढ़ाने का सफल प्रयत्न किया।

भारतेन्दु बाबू को जिस प्रकार खड़ी बोली को बहुत कुछ निखार-बिखार कर काव्योचित बनाने का श्रेय प्राप्त है, उसी प्रकार ब्रज-भाषा परिमार्जित को तथा सुसंस्कृत करने का भी है। उन्होंने ही कहना चाहिए कि इस काल में, ब्रज-भाषा का एक ऐसा रूप सामने रक्खा जो समय और समाज की परिवर्तित दशा के अनुकूल ठहरा और जो प्राचीन ब्रज-भाषा का एक नये रंग-ढंग से निखारा हुआ साहित्यिक रूप होकर फिर आगे चलने में सफल हो सका।

भारतेन्दु बाबू ने ऐसा करने में प्रथम तो प्राचीन ब्रज-भाषा का परिशोधन किया—उसमें से बहुत से ऐसे शब्द और प्रयोगादि हटा दिये जो बहुत घिस कर साधारणतया जनता के प्रयोग से दूर हो चुके थे और केवल परम्परा के पालनार्थ ही रक्खे जाते थे। साथ ही ऐसे शब्दों तथा वाक्यांशों को भी उन्होंने छोड़ दिया जो प्रयोग-बाहुल्य से श्रुति-सुखद भी न रह गये थे, वरन् केवल कवि-परिपाटी के ही आधार पर व्यर्थ के लिए प्रयुक्त किये जाते थे और जो बहुत कुछ अपनी भाव-व्यंजकता भी खो चुके थे। बहुधा ऐसे शब्दों का प्रयोग इधर के साधारण कवि बिना उन के अर्थादि के जाने ही कर दिया करते थे, इसी प्रकार उन्होंने उन पदों और वाक्यांशों को भी विलग कर दिया जिन में विशेष अर्थ-गम्भीरता और भाव-व्यंजकता न थी।

इसके अनन्तर उन्होंने व्रजभाषा के क्षेत्र में नव्य-भव्य भाव-व्यंजक और रस-राग-रंजक पदों तथा प्रयोगों का सुन्दर समावेश भी कर दिया जिससे व्रजभाषा में नवीन स्फूर्ति और शक्ति आ गयी—उसमें नवजीवन का सुसंचार हो चला और वह फिर सबल और सजीव होने लगी। भारतेन्दु बाबू का अनुसरण उनके समकालीन तथा मित्र कवियों ने भी बड़ी सफलता-पूर्वक किया।

इस समय से पूर्व व्रजभाषा के काव्य-कला-काल का अवसान-युग चल रहा था; किन्तु इस समय व्रजभाषा-काव्य के क्षेत्र में काव्य-कला-कौशल का कोई विशेष प्राधान्य एवम् प्राबल्य न रह गया था। काव्य में अलंकार-चातुर्य्य का भी विशेष प्राचुर्य्य न पाया जाता था। यद्यपि तत्कालीन कवियों के समक्ष काव्य के लिए कोई विशेष सामग्री न रह गयी थी—केवल प्राचीन परम्परागत भक्ति, शृंगार आदि सम्बन्धी कुछ विशेष विचार-धाराएँ अवश्यमेव थीं—किन्तु उनमें भी मौलिकोद्भावना के लिए बहुत कम स्थान बचा था। कला-काल की मुक्तक-रचना का बाहुल्य-प्राबल्य इस समय भी विशेष रूप में रहा। इसी के साथ समस्या-पूर्ति की प्राचीन प्रथा अवश्यमेव बड़ी प्रबलता और प्रचुरता के साथ

चलती रही। यद्यपि इसे आश्रय देने वाले अब वैसे राज-दरबार तो न थे तथापि साधारण जनता में इसका प्रचार-प्रसार पूर्ववत ही हो रहा था।

काव्य-रचना के केन्द्र भी इस समय न तो विशेषतया राज-दरबारों में ही थे और न प्रमुख तीर्थ-स्थानों अथवा ऐसे ही अन्य स्थलों में ही रह गये थे। काव्य-रचना-केन्द्र इस समय प्रायः नगरों में बिखर चुके थे और काशी, कानपूर जैसे प्रमुख नगरों में कवियों के कुछ ऐसे संगठित समाज भी बन गये थे, जिनके द्वारा समय-समय पर कवि-सम्मेलनों के आयोजन किये जाते थे और कवि लोग उनमें उपस्थित होकर समस्या-पूर्ति के आधार पर मंजु मुक्तक रचनाओं द्वारा मनोरंजन करते थे। ऐसी समस्या-पूर्तियाँ प्रायः पुस्तकाकार प्रकाशित भी हो जाती थीं। यद्यपि ऐसी दशा के कारण काव्य-साहित्य का कोई सुन्दर प्रबन्ध न हो रहा था—न तो प्रबन्ध काव्य के ही क्षेत्र में और न मुक्तक काव्य में ही—तथापि काव्य-कला और समस्या-पूर्ति की प्रथा किसी रूप में जाग्रत अवश्यमेव थी। यह स्मरणीय है कि ऐसी दशा में भी कवियों के द्वारा काव्य-शास्त्र और छन्द-शास्त्र दोनों की मान-मर्यादा की यथेष्ट रक्षा अवश्य हो रही थी; किसी प्रकार भी न तो इनकी अवहेलना ही की गयी थी और न रचना-व्यवस्था ही विकृत हो रही थी।

इस काल में प्रायः भक्ति-काव्य की ही विशेष प्रबलता रही—और उसमें भी कृष्ण-काव्य का ही प्राधान्य रहा। राम-भक्ति और निर्गुण-काव्य एक प्रकार से शून्य से ही रहे। ऋतु-वर्णन और प्रकृति-चित्रण की ओर अवश्यमेव पर्याप्त ध्यान दिया गया। इन दोनों क्षेत्रों में भी कोई मंजु मौलिक विशेषता का समावेश न हो सका; प्रायः प्राचीन परिपाटी के आधार पर अलंकार-योजना के साथ साधारण अलंकृत-वर्णन ही किया जाता रहा। यह अवश्यमेव ध्यान देने के योग्य है कि भारतेन्दु बाबू और उनके कुछ अनुयायी मित्रों ने काव्य-क्षेत्र में एक नूतन शैली के प्रचार करने का प्रयत्न किया। काव्य के प्रबन्ध और मुक्तक नामक जो भेद किये गये हैं, उनमें से किसी में भी अवश्य इस

नयी शैली के काव्य को नहीं रक्खा जा सकता। इसीलिए हम इसे 'निबन्ध-काव्य' की संज्ञा देते हैं। इससे हमारा तात्पर्य ऐसी काव्य-रचना से है, जिसमें कवि किसी एक विषय पर निबन्ध के रूप में अपने भावों और अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया करता है। भारतेन्दु बाबू का यमुना-वर्णन इस प्रकार के निबन्ध-काव्य का अच्छा उदाहरण है।

इस प्रकार की काव्य-रचना के भी मुख्यतया निम्नांकित रूप होते हैं:—

अलंकृत—जिसमें कवि वर्ण्य वस्तु का वर्णन कल्पना-सम्बन्धी उत्प्रेक्षा, सन्देह, रूपक आदि अलंकारों के आधार पर करता है। इसमें वस्तु-वर्णन तो प्रायः गौण सा किन्तु कल्पना-कौशल और अलंकार-चमत्कार प्रधान सा रहता है।

वर्णनात्मक—जिसमें कवि वर्ण्य वस्तु का वर्णन चित्रोपमता के साथ यथातथ्य रूप में करता है। इसमें प्रायः स्वाभावोक्ति की ही प्रधानता रहती है।

अन्योक्तिमूलक—जिसमें वर्ण्य वस्तु के वर्णन के द्वारा अभीष्ठ अवर्ण्य वस्तु का ज्ञान कराया जाता है। इसमें प्रायः भाव की ही प्रधानता रहती है।

उक्त-वैचित्र्य-मूलक—जिसमें वर्ण्य वस्तु के सम्बन्ध में युक्ति-चमत्कार-चातुर्य्य-युक्त उक्ति-वैलक्षण्य अथवा कुतूहलकारी कथन-कौशल प्रकट करते हुए कवि अपनी वचन-विदग्धता का परिचय देता है।

यद्यपि और भी कई रूप इस प्रकार की रचना के देखे जाते हैं किन्तु वे इतने उल्लेखनीय, प्रचलित और प्रधान नहीं हैं। यद्यपि ब्रज-भाषा-काव्य-क्षेत्र में यह नव-परिपाटी विशेष रूप से प्रचलित तो न हो सकी, किन्तु इसने खड़ी बोली के काव्य-क्षेत्र में इस प्रकार की रचना करने वालों के लिए पथ-प्रदर्शन का कार्य अवश्यमेव अच्छा किया।

इस काल में भक्ति-काल सम्बन्धी गीत-काव्य की परम्परा यद्यपि अच्छे रूप में आगे न बढ़ सकी, किन्तु उसका नितान्त लोप भी न हो सका और कवियों ने सुन्दर पदों की भी रचना की—यद्यपि अधिक मात्रा

में नहीं। कुछ कवियों ने तो स्त्री-समाज और गायक-समाज में भी गाये जाने के योग्य भिन्न-भिन्न प्रकार के रागों और विविध रागनियों वाले गीत (गायन) भी लिखे। उदाहरण में पंडित प्रताप नारायण मिश्र और पंडित बदरीनारायण चौधरी के गायन लिये जा सकते हैं। वस्तुतः यह कार्य भी आवश्यक और सराहनीय था, किन्तु खेद है, सफलता-पूर्वक और आगे न बढ़ सका।

इस काल में रीति-ग्रन्थों की रचना का भी कार्य प्राचीन परिपाटी के आधार पर न्यूनाधिक रूप से चलता रहा—यद्यपि इसमें भी बहुत कुछ शिथिलता सी रही। कई रीति-ग्रन्थ इस समय में रचे तो गये, किन्तु उनमें कोई विशेष मौलिकता न आ सकी। थोड़े ही समय में पद्यबद्ध रीति-ग्रन्थों के स्थान पर गद्यात्मक रीति-ग्रन्थ तैयार हो चले। एक विशेष बात इस काल में यह और हुई कि लक्षण-ग्रन्थों के औदाहरणिक भागों में कुछ कवियों ने नूतनता का कुछ संचार किया—नायक-नायिका-भेद में कुछ नयी बातें समाविष्ट की गयीं। हरिऔध जी के द्वारा 'रस-कलस' में 'देश-प्रेमिका', 'समाज-सेविका' आदि नायिकाओं के नये भेद इसके उदाहरण हैं। इसी प्रकार इस काल में नाट्य-शास्त्र के नियम भी छन्द-बद्ध किये गये।* यह कार्य्य सम्भवतः पहले विशेष रूप में न हुआ था। इस प्रकार इस क्षेत्र में भी, कह कहते हैं कि, यदि अधिक सन्तोष-प्रद नहीं तो साधारणतया सुन्दर ही कार्य्य हुआ है।

इस काल में यों तो अन्य पूर्ववर्ती कालों की प्रमुख रचना-शैलियाँ न्यूनाधिक रूप में चलती ही रहीं, तथापि अधिक-प्रचलित केवल कवित्त-सवैया-शैली, दोहा-शैली, रोला-शैली और विविध-छन्द-शैली ही विशेष रूप में रही हैं। इनमें से कवित्त-रचना-शैली में 'रत्नाकर' तथा 'सरस' जैसे कुछ कवियों ने नव्य विशेषता उत्पन्न की और कवित्त के पाठ-प्रवाह अथवा गति का ऐसा परिष्कार किया कि वह त्वरा गति और मन्थर गति दोनों में समान रूप से चल सके। कहना चाहिए कि इस काल में

---

* डाक्टर 'रसाल'—कृत नाट्य-निर्णय उल्लेखनीय है।

कवित्त, रोला तथा दोहा तीन छन्दों को अत्यधिक प्राचुर्य-प्राधान्य प्राप्त हुआ। सवैया छन्द श्रुति-सुखद और मधुर होता हुआ भी इनके समक्ष अधिक प्रचलित न हुआ। अच्छे-अच्छे कवियों ने भी इस छन्द का बहुत ही कम उपयोग किया है।

सबसे बड़ी विशेषता इस समय के काव्य-क्षेत्र में यह देखी जाती है कि प्रबन्ध और मुक्तक नामक दोनों काव्यों को मिलाते हुए कवित्त-छन्द के द्वारा एक ऐसी नवीन प्रकार की काव्य-रचना शैली उठायी गयी, जिसमें एक साधारण घटना अथवा कथा भी चलती रहती है और रचना का प्रत्येक कवित्त मुक्तक के समान सर्वथा स्वतः पूर्ण और स्वतन्त्र भी रहता है। 'उद्धव-शतक' और 'अभिमन्यु-वध' इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

इस काल में कुछ कवियों ने नन्ददास-कृत 'भँवर-गीत' का भी सफल अनुकरण किया, परन्तु कुछ आधुनिकता के साथ। सत्यनारायण 'कवि-रत्न' का 'भ्रमर-गीत' इसका अच्छा उदाहरण है। विविध छन्दात्मक शैली को लेकर अभी हाल ही में 'दैत्य-वंश' जैसी दो-एक पुस्तकें सामने आयी हैं, जिन्हें सफल प्रबन्ध-काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

प्राचीन सप्तशती अथवा सतसई शैली, जो बीच में बहुत-कुछ रुक सी गयी थी, इधर नवल स्फूर्ति के साथ फिर आगे बढ़ी और इसके आधार पर 'वीर-सतसई' और 'व्रज-सतसई' जैसी दो-तीन प्रमुख सतसइयाँ व्रजभाषा-काव्य-सदन में आ गयीं। साथ ही शतकद्वय और शतकत्रय की परिपाटी भी कुछ प्रचलित हुई और श्री दुलारेलाल जैसे दो-एक कवियों ने इसके आधार पर अपनी दोहावलियाँ प्रकाशित कीं। शतक-पद्धति के आधार पर इसी प्रकार 'उद्धव-शतक', अभिमन्यु-वध' जैसे (पूरे सौ छन्द न देकर सौ से कुछ अधिक छन्द देने की प्राचीन-परिपाटी का अनुसरण करते हुए) दो-एक सुन्दर काव्य लिखे गये।

इसी के साथ 'रत्नाकर' जी ने अष्टक और पंचक रचना-परिपाटियों से भी आठ-आठ और पाँच-पाँच कवित्तों के स्तवक बना भिन्न-भिन्न

विषयों पर रुचिर रचनाएँ कीं। किन्तु इस प्रकार की परिपाटियों का प्रचार अभी तक विशेष रूप से नहीं हो सका। व्रजभाषा की गीत अथवा पद-शैली का यद्यपि इस काल में इतना प्राचुर्य्य अथवा प्रावल्य नहीं रहा तथापि इसका नितान्त लोप भी नहीं हुआ। 'प्रेमघन', 'सत्यनारायण', और 'वियोगी हरि' आदि कवियों ने इस शैली में पर्याप्त तथा अच्छी रचनाएँ की हैं।

व्रजभाषा के कृष्ण-काव्य-क्षेत्र में आद्योपान्त प्रबन्ध-काव्य का एक प्रकार से अभाव सा ही रहा है। इस काल में कुछ कवियों ने इस ओर अच्छा ध्यान दिया है और कृष्ण-काव्यान्तर्गत लीला-काव्य की भी कतिपय सरस और सुन्दर रचनाएँ हुई हैं। यह अवश्यमेव सत्य है कि प्रधानता प्रायः मुक्तक-काव्य की ही रही है।

कृष्ण-काव्य में उद्धव-गोपी संवाद एक बहुत ही महत्वपूर्ण और प्रमुख-प्रसंग रहा है, क्योंकि इसी के अन्दर वैष्णव-सिद्धान्त तथा भक्ति-सिद्धान्त का बड़ी मार्मिकता और रसात्मिकता के साथ विवेचन और स्पष्टीकरण किया गया है। हिन्दी-कृष्ण-काव्य का यह प्रसंग यद्यपि विशेष-तया भागवत पर ही समाधारित है, तथापि इधर के कुछ कवियों ने इस में आध्यात्मिकता तथा तार्किकता को समुन्नत करते हुए बहुत-कुछ मौलिकता के समावेश करने का प्रशस्त प्रयत्न किया है। यह मौलिकता अधिकांश में यद्यपि भाव-प्रकाशन रीति में ही पायी जाती है तथापि इस का यह तात्पर्य्य नहीं कि वर्ण्य वस्तु अथवा विषय के आकार-प्रकार अथवा रूप-रंग में केवल प्राचीन परम्परा का ही न्यूनाधिक अन्धानुकरण किया है, वरन् कह सकते हैं कि वर्ण्य विषय में सैद्धान्तिक विशेषता लाते हुए भी उसे नव परिधानों से सुसज्जित कर दिया है। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जायगी। प्राचीन कवियों के द्वारा जो कुछ इस विषय पर लिखा गया है उसे ध्यान में रखते हुए यदि 'रत्नाकर' और 'सत्यनारायण' की एतद् विषयक रचनाएँ देखी जायँ तो यह ज्ञात होगा कि इनके जैसे कवियों के द्वारा इधर की ओर बड़े वैचित्र्य के

साथ भावों और भावनाओं में भी नूतनता का संचार किया गया है❀।

इसी के साथ यह भी कहना यहाँ अप्रासंगिक न होगा कि डाक्टर त्रिपाठी जैसे पंडित कवियों ने कृष्ण-काव्य के उन अंशों और नायक नायिका-सम्बन्धी उन भावों और भावनाओं पर भी उस आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के साथ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है जिसके कारण इधर के कुछ वे आलोचक अन्यथा कथन करते हैं जो इन मार्मिक रहस्यों से सर्वथा परिचित नहीं हैं†।

इस काल में जिस प्रकार खड़ी बोली के कवियों ने निबन्ध-काव्य-रचना की एक नयी परिपाटी चलायी उसी प्रकार और सम्भवतः सब से प्रथम ब्रजभाषा के कवियों ने उसी निबन्ध-काव्य की सुन्दर और सराह-नीय रचना की। निबन्ध-काव्य से हमारा तात्पर्य्य उस काव्य से है जिसमें किसी प्राकृतिक दृश्य तथा वस्तु आदि पर कवि काव्योचित रूप-रंग के साथ पद्यात्मक निबन्ध या लेख सा लिखता है। पंडित श्रीधर पाठक की 'काश्मीर सुषमा', लाला भगवानदीन का 'रामगिर्य्याश्रम' और 'मेघस्वा-गत', सत्यनारायण जी का 'वसन्त-स्वागत' जैसी रचनाएँ इसके उदाह-रण-स्वरूप में ली जा सकती हैं।

सूक्ष्म कहानी या सूक्ष्म कथा-काव्य—(Short Story-Poetry) की जो परिपाटी प्राचीन कवियों ने मुक्तक-काव्य के क्षेत्र में निखारी और बिखारी थी, उसी परिपाटी के आधार पर इस काल में भी अनेक कवियों ने सुन्दर रचनाएँ की हैं।

इस काल में भी यद्यपि सभी रसों पर न्यूनाधिक रूप में कवियों ने

❀नोट—'रसाल जी' की इस विषय की रचनाओं में मार्मिक मौलि-कता है और चातुर्य्य-चमत्कारमयी वचन-विदग्धता के साथ ही भावों में नवीनता तथा वर्णन-विशेषता है।

†यद्यपि इस संग्रह में डाक्टर त्रिपाठी और डाक्टर रसाल की ऐसी रचनाएँ विशेषतया नहीं दी गयीं, क्योंकि वे गूढ़ और गम्भीर होने के कारण बी० ए० के विद्यार्थियों के लिए दुरूह और उत्कृष्ट हैं।

रचनाएँ की हैं, किन्तु प्राचीन सिद्धान्तानुसार प्रधानता और प्रचुरता प्रायः शृंगार, शान्त (भक्ति) और वीर रसों को ही मिली है। पूर्व-काल में सतसई-शैली का उपयोग शृंगार, भक्ति और नीति-काव्य के ही क्षेत्रों में विशेष रूप से हुआ था, जिसके उदाहरण हैं:—तुलसीदास की दोहा-वली, बिहारी की सतसई और रहीम और वृन्द आदि की सतसइयाँ।

इस काल में कुछ कवियों ने तो इस शैली का उपयोग इसी रूप में किया, किन्तु अन्य कवियों ने अन्य रसों में भी सतसइयाँ लिखी हैं। वियोगीहरि ने वीर रस को प्रधानता देकर वीर-सतसई लिखी, जो अपने ढंग की एक ही रचना है। पंडित रामचरित उपाध्याय की व्रज-सतसई तथा दुलारेलाल की दोहावली भी इसी प्राचीन परिपाटी की सूचिका हैं। भूषण आदि ने पूर्व काल में वीर-काव्य को राष्ट्रीयता के रँग में रँगने का जो स्मरणीय और अनुकरणीय कार्य्य किया था; उसी का अनुसरण करते हुए इस काल में भी कुछ कवियों ने राष्ट्रीय वीर-काव्य लिखा है, जिसमें भूषण आदि की अपेक्षा आधुनिक राष्ट्रीय-भावना और स्वदेशा-नुराग का सच्चा और सुन्दर स्वरूप अधिक मिलता है।

इस काल के प्राथमिक भाग में तो प्रायः रचना-शैली और विचार-धारा में कोई भी विशेष परिवर्तन नहीं हुआ—प्रायः प्राचीन विषय प्रच-लित प्राचीन परिपाटी के ही आधार पर न्यूनाधिक विशेषता के साथ लिखे जाते रहे। बहुत कुछ अंशों में तो ऋतु-वर्णन, नायक-नायिका-चित्रण और भक्ति तथा धर्म-सम्बन्धी विचार कवियों के लिए व्यापक विषय से ही रहे और इन्हीं में थोड़े-बहुत अन्तर-प्रत्यन्तर के साथ कवि लोग अपनी-अपनी लेखनी चलाते रहे। काव्य-कला में भी उनके द्वारा कोई विशेष नव्य-भव्य कौशल न विकसित किया जा सका। इसीलिए भाव, कल्पना और कला-कौशल की दृष्टि से भी तत्कालीन रचनाएँ बहुत साधारण श्रेणी की ही ठहरती हैं। बहुतों में तो प्राचीन परम्परागत प्रच-लित भावों का पिष्टपेषण मात्र ही है; किन्तु इधर की ओर 'रत्नाकर', आदि कवियों के द्वारा काव्य में अवश्यमेव मार्मिकता की वृद्धि हुई है और साथ

ही काव्य-कला-कौशल की भी सफल सिद्धि से उसकी समृद्धि बढ़ी है।

उक्ति-वैचित्र्य और वाग्वैदग्ध्य के साथ ही साथ इन कवियों के द्वारा काव्य में विशद-व्यंजकता और रचना-रंजकता का भी सराहनीय समावेश किया गया है। अर्थ-गाम्भीर्य्य तथा कोमलकान्त पद-लालित्य की ओर भी इधर के कवियों ने अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया है। न केवल इन का ध्यान काव्य की रसात्मिकता के द्वारा रागात्मिक वृत्ति के उत्तेजित करने की ओर ही रहा है वरन् अलंकार आदि के चारु-चमत्कार-चातुर्य्य से कौतुक-कुतूहल-प्रियता की मनोवृत्ति के भी उद्दीप्त करने तथा तज्जन्य आनन्द की ओर ले चलने की ओर भी बढ़ा है।

इसके साथ ही भावों की सूक्ष्मता, विचारों की गूढ़ता या गम्भीरता और सैद्धान्तिक मार्मिकता से काव्य को अत्युत्कृष्ट बनाने की ओर भी ऐसे कवियों ने सफल और सराहनीय प्रयत्न किया है। हिन्दी और संस्कृत के काव्यों की परम्पराओं को लेते हुए भी इधर के कवियों ने अन्य (अँग-रेज़ी, उर्दू, फारसी आदि) साहित्यों की भी ऐसी विशेषताओं से लाभ उठाने का उद्योग किया है, जो हिन्दी-साहित्य में सब प्रकार अबाध रूप से सरलतया समाविष्ट की जा सकती हैं और उसमें अधिक रम्यता तथा भावगम्यता भी ला सकती हैं।

इसी से सम्भवतः कवियों को प्राचीन काव्य-कौतुक के लाने का (जिसका मुख्य उद्देश्य कुतूहलानन्द का देना ही है) विशेष अवसर नहीं प्राप्त हो सका। कदाचित् ही किसी कवि ने कूट-काव्य और चित्र-काव्य की मौलिक रचना की ओर सफल प्रयत्न किया हो। प्रायः भाव, भावना और कल्पना के कौशलों को नये ढंग और नये रंग से प्रकाशित करने की ओर ही कवियों का विशेष ध्यान रहा है। कुछ कवियों ने वर्णनात्मक और कथात्मक-काव्यों में भी सफलता पायी है; किन्तु यह दोनों क्षेत्र भी विशेषतया अधिक हरे-भरे नहीं हो सके।

इस काल में प्रकृति-चित्रण की प्राचीन-परिपाटियों के साथ ही साथ 'रत्नाकर' जैसे कुछ कवियों ने उसमें आधुनिकता और नूतन मौलि-

कता का भी अच्छा संचार किया है। ऋतु-वर्णन की परिपाटी इस काल के पूर्वार्ध में तो प्रायः प्राचीन रूप से ही चलती रही, किन्तु प्राकृतिक दृश्यों, स्थलों और वस्तुओं आदि का आलम्बन के रूप में भी श्रीधर पाठक, लाला भगवानदीन, रत्नाकर और सत्यनारायण जैसे, कुछ कवियों ने अच्छा चित्रण किया है।

वर्तमान काल की कुछ नयी पद्धतियों और विचार-धाराओं को भी इधर के कतिपय सुकवियों ने सुचारुता से निखारते और निखारते हुए व्रज-भाषा के काव्य-क्षेत्र में अनुकरणीय रंग-ढंग से उपस्थित किया है। रहस्यवाद, प्रतिबिम्बवाद और छायावाद के वास्तविक-मर्मों को लेते हुए 'हरिऔध' जैसे, कुछ कवियों ने बड़ी सुन्दर रचनाएँ की हैं। आध्यात्मिक और दार्शनिक-सिद्धान्तों को मंजुल मार्मिकता के साथ तार्किक रूप में मौ-लिकता लाते हुए मिश्र-बन्धुओं और डाक्टर त्रिपाठी जैसे कवियों ने चारुता और चतुरता से काव्य के क्षेत्र में आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया है।

भाषा—इस प्रकार संक्षेप में आधुनिक-व्रजभाषा-काव्य के भाव-पक्ष और कला-पक्ष पर विचार कर चुकने के बाद यहाँ एतत्कालीन व्रज-भाषा के रूप की ओर भी अंगुल्या-निर्देश कर देना अनुपयुक्त न होगा। भार-तेन्दु के पश्चात् उनके समकालीन तथा अनुयायी कवियों ने व्रज-भाषा में कोई विशेष परिष्कार अथवा परिमार्जन नहीं किया। न तो उन्होंने उसमें साहित्यिक सौष्ठव तथा समुत्कर्ष के बढ़ाने का ही अधिक प्रयत्न किया और न उसे आधुनिक भाव-व्यंजनोचित बनाने का ही विशेष उद्योग। उसमें एकरूपता के लाने की ओर भी उनका विशेष ध्यान नहीं रहा; किन्तु उसकी सरलता, स्पष्टता और सुबोधता की ओर वे विशेष प्रयत्नशील होते हुए प्रतीत होते हैं।

उत्तरकालीन व्रजभाषा में दो अत्यन्त प्रमुख विशेषताएँ उत्पन्न की गयी हैं और उन विशेषताओं से व्रजभाषा को जो विशेष प्रकार का गौरव प्राप्त हुआ है वह प्रथम तो यह है कि उत्तर कालीन व्रजभाषा में प्रायः इधर के सभी उत्कृष्ट कवियों द्वारा संस्कृत-शब्दों की विशेषतया योजना

की गयी है, जिससे भाषा बहुत-कुछ उत्कृष्ट, साहित्यिक और स्थायी सी हो गयी है—उसमें गम्भीरता और गूढ़ता आ गयी है—और वह संस्कृत के समान सुपवित्र शिष्ट-सेव्य और पंडित-पूज्या सी हो गयी है। इससे अन्य प्रान्तों में भी इसके पुनः सुप्रचालित होने की सम्भावना अधिक हो गयी है। श्रीधर पाठक, 'हरिऔध', 'रत्नाकर'. आदि सुकवियों की व्रज-भाषा इसके उदाहरण में रखी जा सकती है।

पूर्व और उत्तर कालों के मध्य में भाषा-मिश्रण-परिपाटी की जो प्रधानता और प्रचुरता हुई थी वह अब तक कवियों के एक विशिष्ट समाज में चलती ही रही है। इससे यद्यपि भाषा को विशदता तो प्राप्त होती है किन्तु उसकी विशुद्धता को आघात भी पहुँचता है। इस परि-पाटी के आधार पर चलने वाली व्रजभाषा को हम मुख्य दो रूपों में रख सकते हैं:—

एक तो व्रजभाषा का वह रूप है जिसमें खड़ी बोली के भी शब्द (क्रिया-पद आदि) तथा प्रयोग स्वतन्त्रता से प्रयुक्त होते हैं। ऐसी भाषा 'बचनेश' और 'सनेही', जैसे सुकवियों की रचनाओं में मिलती है।

दूसरा व्रजभाषा का वह रूप है जिसमें अवधी तथा अन्य प्रान्तीय बोलियों के पद और प्रयोग भी व्यवहृत किये जाते हैं। ऐसा स्वरूप 'द्विजेश', 'द्विजश्याम' और 'अम्बिकेश' जैसे सुकवियों की रचनाओं में मिलता है।

'रत्नाकर' जी और उन्हीं के साथ 'रसिक-मंडल' के सुकवियों ने व्रजभाषा की विशुद्धता और एकरूपता की ओर विशेष ध्यान दिया है। यद्यपि 'रत्नाकर' जी की भाषा में भी कुछ पूर्वीय-प्रयोग पाये जाते हैं, फिर भी उनकी भाषा अपने एक नये साँचे में ढली हुई है। भाषा-प्रयोग के विचार से इस समय के कवियों को हम इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं:—

राज-दरबारी कवि—जिनकी भाषा में प्राचीनता की पूरी झलक के साथ ही प्रान्तीयता का भी प्राधान्य रहता है और उसमें बहुत-कुछ

रजवाड़ी प्रयोग पाये जाते हैं। बिजावर के राज-कवि 'बिहारी', सीतामऊ-नरेश, झालावाड़-नरेश, रीवाँ के रामाधीन आदि की भाषा में इसके उदाहरण अधिक मिलते हैं।

स्वतन्त्र कवि—इनमें दो मुख्य दल हैं। एक दल तो 'रत्नाकर' 'रसाल', डाक्टर त्रिपाठी, श्रीधरपाठक आदि नवीन-शिक्षा-प्राप्त सुकवियों का है, जिसकी भाषा साहित्यिक सौष्टव-समन्वित और समुत्कृष्ट रहती हैं। दूसरा दल उन सुकवियों का है जो नवशिक्षा-दीक्षा-दीक्षित न होकर प्राचीन पंडिताऊ पद्धति से पढ़े और कढ़े हुए हैं। इसलिए इस दल के कवियों की भाषा बहुत कुछ प्राचीन-शैली के ही साँचे में ढली सी रहती हैं। इन दोनों दलों के बीच में एक कवि-दल ऐसा भी है जिसमें दोनों दलों की विशेषताएँ आंशिक रूप में मिलती हैं।

व्रजभाषा-क्षेत्र में किसी अच्छे व्याकरण के न होने से प्रायः क्रियाओं और कारकों के रूपों और प्रयोगों में बहुत-कुछ गड़बड़ी मिलती है। क्रियाओं में अनिश्चित बहुरूपता विशेष रूप से देखी जाती है। उदाहरणार्थ 'देना' क्रिया के सामान्यभूत काल में दीन्ह्यों, दीन्हों, दयो, दीनो, दियो आदि रूप स्वतन्त्रता से चल रहे हैं। ऐसी स्वच्छन्दता और अनिश्चित बहुरूपता 'रत्नाकर' आदि सुकवियों की भाषाओं में नहीं मिलती। इसी प्रकार कारकों के प्रयोगों में भी बड़ी अव्यवस्था सी फैली हुई है। कर्ता का 'ने' चिह्न, जिसका प्रयोग प्रायः शुद्ध साहित्यिक-व्रजभाषा में कदापि नहीं होता अब प्रायः स्वच्छन्दता से प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार कर्म के 'कौं', तृतीया के 'सौं', चतुर्थ के 'कौं' षष्ठी के 'कौ' और अधिकरण के 'मैं' के स्थानों पर कवि लोग खड़ी बोली के प्रचलित रूप इच्छानुसार प्रयुक्त करते हैं।

व्याकरण-व्यवस्था के लिए 'रत्नाकर' जैसे सुकवियों का कार्य वस्तुतः सराहनीय है। इसी के साथ ही संस्कृत और फारसी आदि के शब्दों को व्रजभाषा-पद्धति के अनुसार देशज रूप न देकर उनके तत्सम या मूल रूपों में ही प्रयुक्त करने की अभिरुचि प्रायः कवियों में देखी जाती है।

इसी प्रकार कारकों की विभक्तियों को शब्दों के साथ और शब्दों से पृथक् रखने की भिन्न-भिन्न शैलियाँ भी अब तक उसी प्रकार अनिश्चित रूप से चल रही हैं।

निष्कर्ष यह है कि भाषा के परिष्कार, स्थैर्य्य और नियन्त्रण की ओर अद्यावधि यथेष्ट रूप में कार्य नहीं हो सका। इसमें सन्देह नहीं कि 'रत्नाकर' और उनके साथ के कवियों ने इसके लिए स्तुत्य कार्य किया है; इसके लिए आवश्यकता अब केवल कवियों के संगठित होकर मतैक्य-स्थिरता और सहकारिता की ही है।

सम्पादन के सम्बन्ध में—यद्यपि आधुनिक व्रजभाषा कवियों के एक सर्वांगपूर्ण सुन्दर-संग्रह के उपस्थित करने का विचार हमारे मन में बहुत पहले से ही था, किन्तु यह कार्य अनेक कारणों से अब तक पूरा न हो सका—हाँ, यद्यपि इसके लिए आवश्यक सामग्री अवश्यमेव एकत्रित हो चुकी है। कुछ वर्ष पूर्व हमारे सम्मुख एक दूसरा विचार इस रूप में आया कि विश्व विद्यालयों के विद्यार्थियों को आधुनिक खड़ी बोली-काव्य से परिचित कराते हुए आधुनिक व्रजभाषा-काव्य का भी परिचय देना समीचीन है। अतः उस संग्रह के कार्य को स्थगित कर इस विचार से ही प्रथम यह संग्रह यहाँ उपस्थित किया जा रहा है। इसमें इसीलिए आधुनिक व्रजभाषा के केवल ऐसे ही चुने हुए कुछ कवि रक्खे गये हैं, जिन के स्थान बहुत-कुछ साहित्य-क्षेत्र में निश्चित हो चुके हैं और जिन्हें प्रतिनिधियों के रूप में लिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में मत-भेद हो सकता है और उसका होना स्वाभाविक ही है; किन्तु हमने यहाँ अपना एक विशेष दृष्टि-कोण रक्खा है।

दूसरा विचार इसमें यह रहा है कि जहाँ तक हो सके उन्हीं कवियों को यहाँ लिया जाय, जिनके काव्य-ग्रन्थ प्रायः साहित्य-संसार में आ चुके हैं, जो प्रसिद्ध तथा सुपरिचित हैं। एक अच्छी संख्या इस समय व्रज-भाषा-कवियों की ऐसी भी है, जिनकी रचनाएँ कवि-सम्मेलन आदि के अवसरों पर तो सुनने को मिलती हैं; किन्तु पुस्तक-रूप में वे अब तक

नहीं आ सकीं। ऐसी अवस्था में यह अधिक उपयुक्त नहीं जान पड़ता कि विश्व-विद्यालय के विद्यार्थियों को ऐसे कवियों की, जिनका उन्हें किंचित्मात्र भी परिचय प्राप्त नहीं है, केवल थोड़ी-सी रचनाएँ देकर ही छोड़ दिया जाय। साथ ही विद्यार्थियों के समय और पाठ्य-क्रमादि का भी ध्यान रखते हुए यही उचित जान पड़ा कि उन्हें केवल कुछ सुप्रसिद्ध और सुपरिचित प्रतिनिधि कवियों की चुनी हुए रचनाएँ देकर ही आधुनिक व्रजभाषा-काव्य की प्रगति से परिचित कराया जाय।

इस संग्रह में यह भी ध्यान देने की बात थी कि अधिकतः वे ही कवि और उनकी वे ही रचनाएँ रक्खी जायँ, जिनकी भाषा यदि सर्वथा नहीं तो अधिकांश में विशुद्ध, संयत और उत्कृष्ट-साहित्यक रूप की नियन्त्रित व्रजभाषा हो। मिश्रित व्रजभाषा की रचनाएँ इसीलिए छोड़ दी गयी हैं, यद्यपि उनमें से बहुत-सी बड़ी ही सुन्दर और उच्चकोटि की भी हैं।

रचनाओं के संकलन में यहाँ विशेषतया निम्नांकित बातों पर अधिक ध्यान रक्खा गया है :—

(१) संकलित रचनाएँ सर्वथा ऐसी हों जो लड़कों और लड़कियों को समान रूप में निस्संकोच पढ़ायी जा सकें। अतएव अधिक शृंगार-रस की रचनाएँ, यद्यपि वे बहुत-कुछ उच्चकोटि की भी हैं, यहाँ नहीं दी जा सकीं। फिर भी शृंगार-रस को नितान्त तिलांजलि भी नहीं दी गयी है।

(२) यथासाध्य सभी प्रमुख-रसों और रचना-शैलियों को भी यहाँ स्थान देने का प्रयास किया गया है। साथ ही जो रचनाएँ यहाँ ली गयीं हैं उनमें यह विचार भी रक्खा गया है कि वे अपने रचयिता की यथा-साध्य सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ ही रहें। इस प्रकार इसमें शृंगार, वीर, शान्त, करुण आदि सुप्रमुख रसों, काव्य के प्रमुख भेदों अर्थात् प्रबन्ध (कथा-काव्य), निबन्ध, मुक्तक, धार्मिक, दार्शनिक आदि और कवित्त, सवैया, दोहा (सतसई) भ्रमर-गीत, रोला, पद आदि प्रमुख शैलियों के चुने हुए नमूने रक्खे गये हैं।

(३) इस बात पर भी पूरा ध्यान दिया गया है कि ऐसी ही उत्कृष्ट

रचनाएँ यहाँ संकलित की जायँ जो बी० ए० जैसी कक्षाओं के लिए उपयुक्त हों और उनमें कला काव्य-कौशल. भावोत्कर्ष, अर्थ-गौरव और विचार-गाम्भीर्य्य भी यथेष्ट मात्रा में हों; साथ ही इन संकलित रचनाओं के आधार पर आधुनिक व्रजभाषा-काव्य की प्रगति का यथाक्रम ऐतिहासिक-विकास भी देखा जा सके। इसके लिए कवियों के साहित्यिक महत्व, मूल्य और स्थानादि का विशेष विचार न करके उनके समयानुसार उन्हें यहाँ स्थान दिया गया है। उनके महत्व और मूल्य आदि निर्धारण का कार्य्य पाठकों पर ही छोड़ दिया गया है और यही समुपयुक्त युक्तियुक्त भी प्रतीत होता है।

(४) प्रत्येक कवि का सूक्ष्म, सचित्र परिचय देकर उसके रचना-कौशल पर भी संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालते हुए उसकी कुछ चुनी हुई रचनाएँ संकलित की गयी हैं; तदनन्तर अधिक अध्ययनाकांक्षियों के लिए उनके रचे हुए ग्रन्थों की तालिका भी अन्त में दे दी गयी है।

सम्पादन के करने में इस बात का भी ध्यान रक्खा गया है कि प्रत्येक कवि की भाषा, लेखन-शैली और शब्दों के रूप आदि ज्यों के त्यों ही रहें, उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन या रूपान्तर न किया जाय, जिससे भाषा तथा लेखन-शैली के विविध रूपों तथा विकास का भी यथेष्ट परिचय प्राप्त हो सके—ठीक उसी प्रकार, जैसे भाव-धारा आदि का यथाक्रम विकास देखा जा सके।

आशा है पुस्तक अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकेगी और विद्यार्थियों के लिए उपयोगी ठहरेगी।

प्रयाग विश्वविद्यालय
शरद्-पूर्णिमा संवत् १९९६ — रामशंकर शुक्ल

विषय-सूची

द्वितीय सप्तक

आधुनिक व्रजभाषा-काव्य

श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

'प्रेमघन' जी भारतेन्दु-मंडल के जगमगाते हुए नक्षत्रों में से थे। आपका जन्म भाद्रपद-कृष्ण ६, संवत् १९१२ वि० में और निधन फाल्गुन-शुक्ल १४, संवत् १९७९ में हुआ। आपने अपने जीवन का अधिकांश समय मिर्ज़ापुर में व्यतीत किया।

आपका जीवन तो सात्विक था किन्तु आपके रहन-सहन का ढंग भारतीय रईसों के रंग में रँगा था। जीवन के प्रारम्भ में ही आप पर भारतेन्दुजी का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ चुका था कि अन्त समय तक वह वैसा ही बना रहा। उपाध्याय जी सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों की ओर जन्म भर तक जागरूक बने रहे, इस जागरूकता का प्रभाव इनकी रचनाओं में स्पष्ट दीखता है।

इनकी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ भारतेन्दु जी के आदर्शों से ही अनुप्राणित थीं। उन्हीं की देखादेखी 'प्रेमघन' जी ने "आनन्दकादम्बिनी"

नामक एक मासिक पत्रिका तथा 'नागरी-नीरद' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला। इनके ही माध्यम से इन्होंने अपने सामाजिक, साहित्यिक और राजनीतिक सिद्धान्तों के प्रचार का प्रयत्न किया।

हिन्दी के अतिरिक्त ये उर्दू में भी कविता करते थे। इसमें इन्होंने अपना उपनाम 'अब्र' रक्खा था। इनकी हिन्दी-गद्य शैली अलंकृत है, जिसमें कहीं-कहीं शब्दाडम्बर के कारण भाषा में स्वाभाविकता का अभाव अथच कृत्रिमता का समावेश हो जाता है। नाटकों में इनकी भाषा प्रायः उर्दू-मिश्रित हिन्दी है। यही बात इनकी पत्रकार-शैली के विषय में भी कही जा सकती है।

ब्रजभाषा पर 'प्रेमघन' जी का अनन्य प्रेम था, इसलिए खड़ी बोली के काव्य का आन्दोलन इन्हें विशेष प्रभावित न कर सका। 'आनन्द अरुणोदय' के अतिरिक्त आप ने खड़ी बोली में कोई अन्य रचना नहीं की। ये नवीन परिस्थितियों के संघर्ष में जीवन-यापन करते हुए उन पर गम्भीर-चिन्तवन करने वाले कवि थे। भारत की दीन-हीन दशा पर अपने इतर समकालीनों की भाँति इन्होंने भी आँसू बहाये हैं। भारतीयों के उत्कर्ष पर इसी प्रकार ये प्रसन्न भी हुए हैं। इनकी कविताएँ प्रायः ऐसे सम-सामयिक विषयों पर होतीं थीं, जो तत्कालीन समाज की बदलती हुई प्रवृत्तियों के प्रति कवि की सहानुभूति सूचित करती हैं।

'प्रेमघन' जी नागरी-प्रचार और राष्ट्रीय महासभा के पक्के समर्थक थे।

मंगलाचरण

वारौं अंग-अंग-छवि ऊपर अनंग कोटि,
अलकन चारु, काली अवली मलिन्द की,
वारौं लाख चन्द वा अमन्द मुख-सुखमा पै,
वारौं चाल पै मराल गति हूँ गयन्द की;
वारौं 'प्रेमघन' तन-धन-गृह-काज-साज,
सरल समाज, लाज गुरु-जन-बृन्द की,
वारौं कहा और, नहिं जानौं बीर ! वापै अब,
मेरे मन बसी बाँकी मूरति गोबिन्द की।

टेढ़ो मोर-मुकुट, कलंगी सिर टेढ़ी राजै,
कुटिल अलक मानौ अवली मलिन्द की,
लीन्हें कर लकुट कुटिल, करै टेढ़ी बातैं,
चलै चाल टेढ़ी मद-माते से गयन्द की;
'प्रेमघन' भौंह बंक, तकनि तिरीछी जाकी,
मन्द करि डारै सबै उपमा कबिन्द की,
टेढ़ो सब जगत जनात जब हीं सों आनि,
मेरे मन बसी बाँकी मूरति गोबिन्द की।

नव नील नीरद-निकाई तन जाकी. जापै,
कोटि काम अभिराम निदरत वारे हैं,
'प्रेमघन' बरसत रस नागरीन-मन,
सनकादि-संकर हू जाको ध्यान धारे हैं;
जाके तेज-अंस दमकति दुति सूर-ससि,
घूमत गगन मैं असंख्य ग्रह-तारे हैं,
देवकी के बारे, जसुमति-प्रान-प्यारे, सिर
मोर-मुकुटवारे वे हमारे रखवारे हैं।

काली अलकावली पै मोर-पंख-छबि लखि,
बिलखि कराहैं ये कलाप मुरवान के,
पीत-परिधान-दुति दाब्यो दामिनी दुराय,
लखि मोतीमाल, दल भाजे बगुलान के;
'प्रेमघन' घनस्याम अति अभिराम सोभा,
रावरी निहारि लाजे घन असमान के,
गरजनि-मिस करैं दीनता-अरज, ढारैं,
अँसुवान-व्याज बारि-बिन्दु बरसान के।

पावस-प्रमोद

रटै दादुर, चातक-मोरन-सोर, सुनैं सजनी! हियरे हहरैं,
जुरि जीगन-जोति-जमात अरी, बिरहागिन की चिनगीन भरैं;
'घन प्रेम' प्रिया नहिं आये चलौ, भजि भीतरैं कालौ घटा घहरैं,
लखि मैन-बहादुर, बादर के, कर सों चपला-असि छूटी परैं।

खिलि मालती-बेलि प्रफुल्ल कदम्बन पैं लपटी लहरान लगी,
सनकै पुरवाई सुगन्धि-सनी, बक-औलि अकास उड़ान लगी;
पिक, चातक, दादुर, मोरन की, कल बोल महान सुहान लगी,
'घन प्रेम' पसारत सी मन में, घन-घोर-घटा घहरान लगी।

उड़ैं बक-औलि अनेकन व्योम, बिराजत सैन समान महान,
भरे 'घनं प्रेम' रटैं कबि चातक, कूकि मयूर करैं जस गान;
छनै छन हीं छन-जोन्ह छुटै, छिति-छोर निसान-छटा छहरान,
बलाहक पै मनु आवत आज, है पावस भूपति बैठि बिमान।

चंचला चोखी कृपान बनी, अवली बगुलान की सैन रही जुर;
सारँग सारँग है सुर-नायक, जय-धुनि दादुर-मोरन को सुर;
वे 'घन प्रेम' पगी बिरहीन पै, ब्याज लिये बरसा अति आतुर,
आवत, धावत बीरता धारि, भरे बदरा ये अनंग-बहादुर।

जेवर जराऊ जोति-जीगन जनात किल,
किंकिनी लौं कूकनि मयूरन की डार-डार,
सारी स्यामताई पै किनारी चंचला की लखि,
प्रेमी चातकन-गन दीनो मन वार-वार;
पुरवाई पवन प्रभाय छहराय छबि,
देखो तो दिखात और दुरत चन्द बार-बार,
बदन बिलोकनि कों रजनी-रमनि बस,
'प्रेमघन' घूँघटैं रही है जनु टार-टार।

लहलही होय हरियारी हरि-यारी तैसें,
तीनों ताप ताप को सँताप करस्यो करै,
नाचै मन-मारे मोर मुदित समान जासों,
विषय-विकार को जवासो झरस्यो करै;
'प्रेम-घन' प्रेम सों हमारे हिय-अम्बर मैं,
राधा-दामिनी के संग सोभा सरस्यो करै,
घनस्याम सम घनस्याम निसि-बासर हू,
करुना-कृपा के वारि-बुन्द बरस्यो करै।

———

वर्षा-विनोद

भाई पुरवाई की चलनि, चहँकार चारु,
चातक-चमू की निसि-द्यौस चारौ पहरन,
अम्बर उड़त बगुलान की अवलि, कुंज,
नाचि-नाचि मुदित मयूर लागे लहरन;
कलित कदम्बन सों लपटी लवंग-लता,
छिति छन-छन छन-छबि-छत्रि छहरन,
'प्रेमघन' मन उपजाय, सरसाय हिय,
घेरि घन सघन घनेरे लागे घहरन।

अतसी-कुसुम सम सोभा मैं लसत बिज्जु,
लता कै बसत पट पीत अभिराम है,
अवली भली है बगुलान की बिराज रही,
गर मैं मनोहर कै मोतिन को दाम है;
'प्रेमघन' मधुर-मधुर धुनि गरजनि,
बाजत कै बाँसुरी रसीली सुधा-धाम है,
रंचक निहारे चित चोरे लेत आली मेरी !
यह घनस्याम है कि वह घनस्याम है।

बसन्त-बहार

जाके बल सरल कँपायो जग-जन सोई,
पाय कै वियोग-बिथा सिसिर समन्त की,
हाहाकार सोर चहुँ ओर सों करत घोर,
लीने धूरि आवत, उड़ावत दिगन्त की;

'प्रेमघन' अवलोकिये तौ बन-बागन में,
कुंज-तरु-पुंज छीनि छबि छबिवन्त की,
तोरत पवन, झकझोरत लतान आज,
डोलै बावरी सी बनी बैहर बसन्त की।

रसाल की मंजुल मंजरी पै,
किलकारत कोकिल औ कल कीर,
पसारत सो 'घन प्रेम' रसै,
सुभ सीतल मन्द-सुगन्ध-समीर;
बस्यो बन-बागन बीच बसन्त,
रही छबि छाय बिलोकियो बीर,
बिकास प्रसूनन-पुंज तैं कुंज,
गलीन-गलीन अलीन की भीर।

मदमाते भिरे भँवरे भँवरीन, प्रसून मरन्द चुचातन सों,
किलकारत कोइलैं मंजु रसालन-मंजरी सोर सुहात न सों;
'घन प्रेम'-भरी तरु तैं लपटी, लतिका लदि नूतन पातन सों,
मन बौरैं न कैसे सुगन्ध-सने, इन बौरे बसन्त की बातन सों।

——

श्याम-सौन्दर्य्य

लखत लजात जलजात लोयननि जासु,
होत दुति मन्द मुख-चन्दहिं निहारी है,
रति मैं रती हूँ रति जाकी ना विरंचि रची,
सची-मेनका मैं ऐसी सुन्दरी सुधारी है;

नागरी सकल गुन-आगरी सुजाकी छवि.
लखि उरबसी उर बसी सोच भारी है,
वेगि बरसाय रस-प्रेम 'प्रेमघन' आप,
तोपैं बनवारी वारी बरसानेवारी है।

——

प्रेम-दशा

मोर के मुकुट की लटक अटक्यो कै आह,
अलकावली के जाल जाय उरझाय गो,
अरविन्द आनन बस्यो पै चोखे चखनि-
चितौन-भय आय बन-बरुनी समाय गो;

'प्रेमघन' मुसक्यानि-माधुरी पग्यो धौं बलि,
पाय तौ बताय वाकी कौन छबि छाय गो,
हेरी हरिनी के दृगवारी हरि नीके हेरि,
हेरत हीं हेरत सु मो मन हिराय गो।

——:——

शरीर-शोभा

कुन्दन सी दमकै द्युति देह, सुनीलम सी अलकावलि जोहैं,
लाल के लाल भरे अधरामृत, दन्त सुहीरन सों सजि सोहैं,
रत्न-मई रमनी लखि कै, 'घनप्रेम' न जो प्रकटैं अस को हैं,
वाल प्रबालन सी अँगुरी, तिन मैं नख मोतिन से मन मोहैं।

अनुराग-पराग भरे मकरन्द लौं,
लाज लहे छबि छाजत हैं,
पलकैं-दल मैं जनु पूतरी मत्त,
मलिन्द परे सम साजत हैं;
'घन प्रेम' रसै बरसै सुचि सील,
सुगन्ध मनोहर भ्राजत हैं,
सर सुन्दरता, मुख-माधुरी वारि,
खिले दृग कंज विराजत हैं।

वादहिं बढ़ाओ बकवादहिं छुटै ना प्रीति,
चन्द औ चकोर की औ सुमन-मलिन्द की,
लागी मोहिं चाह की गुड़ैल कुछ ऐसी भगी,
भभरि कै जासों लाज गुरु-जन वृन्द की;
प्रेमघन' प्रेम-मदिरा की मतवारी होय,
खोय बुधि चेरी भई मैं मनोज रिन्द की,
भूल्यो उभै लोक-सोक बीर! जब ही सों आनि,
मेरे मन बसी बाँकी मूरति गुबिन्द की।

जाकी आप सुधि-बुधि बिकल बनाय देत,
कुंजनि की कोऊ पतिया जो कहूँ खरकी,
रोम उलहत, मन बूड़ै बिथा-बारिद मैं,
'प्रेमघन-बरसि बहावै उर-धर की
जकरी हौं लाज की जँजीरन सों, ऐंचे लेय,
मानो मीन वारी वंसी धीमर के कर की,
धरकी हमारी फेरि छतिया कहूँ धौं बीर!
बाजी हाय! बंशी फेरि वाही बाजीगर की।

पद

ऊधौ कहा कही उन कैसे ?

हा ! हा ! फेरि समुझि समुझावौ रहे जहाँ जित जैसे,
जेहि बिधि जो जाके हित भाख्यो उतनो ही बस वैसे;
बरसावत बतियन को रस ज्यों वे, बरसावहु तैसे ?
भरी प्रेम घनस्याम 'प्रेमघन' रटत राधिका ऐसे ।

ऊधौ बात कहो कछु नीकी !

सुन्दर स्याम मदन-मन मोहन माधव प्यारे पी की,
सानि सानि जनि ज्ञान मिलावहु, भाखी उनके जी की;
हम प्रेमिन तजि प्रेम-नेम नहिं भावतिं बतियाँ फीकी,
बरसावौ रस-प्रेम 'प्रेमघन' और लगै सब फीकी ।

देखहु दिपति दीप दीवारी !

कातिक कृष्ण कुहू निसि मैं यह लागत कैसी प्यारी !
खेलत जुवा जुवन-जन जुवतिन सँग सब सुरति बिसारी,
अम्बर अमल, बिमल थल-तल जगि जगमग जोति उजारी ।
स्वच्छ सदन साजे, सज्जित ह्वै सोहत नर अरु नारी,
मिलि मित्रन सब घूमत इत उत छाई द्यूत-खुमारी;
छाई छवि बीथी-बजार मैं भई भीर बहु भारी,
मोल खिलौना मोदक लै कै देत बाल किलकारी;
श्री बदरी नारायन जाचक-जन जाँचत त्योहारी ।

(प्रेमघन-सर्वस्व से)

श्री बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—अ—पद्य-काव्य—स्फुट रचनाएँ
ब—संगीत-काव्य—'संगीत-सुधा'

नाटक—भारत-सौभाग्य, प्रयाग-रामागमन, परांगना रहस्य महा-नाटक, वृद्ध-विलाप (प्रहसन)

गद्य-काव्य—स्वभाव बिन्दु-सौन्दर्य, विधवा-विपत्ति, वर्षा, कलम की कारीगरी

काव्य-संग्रह—'प्रेमघन-सर्वस्व'

श्री पंडित श्रीधर पाठक

आगरे के जौंधरी गाँव के एक सारस्वत ब्राह्मण-कुल में पंडित श्रीधर पाठक का जन्म संवत् १६१६ वि० में हुआ था। संस्कृत और अँगरेजी की शिक्षा प्राप्त करने के बाद आप सरकारी दफ्तर में नौकर हो गये और अपनी योग्यता तथा कार्य-क्षमता से सैक्रेटेरियेट के एक विभाग में सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त हुए। पेंशन लेकर आप प्रयाग में ही रहने लगे थे और यहीं संवत् १६८५ वि० में आप का स्वर्गवास हुआ। आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी निर्वाचित हुए थे।

आपने व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविताएँ लिखीं। खड़ी-बोली के ये अच्छे कवि कहे जा सकते हैं। 'एकान्तवासी योगी' (अनुवाद) 'जगत-सचाई-सार' और

'स्वर्गीय-वीणा' में इन्होंने हिन्दी के लिए बिल्कुल नये ढंग से हृदय की स्वाभाविक और स्वच्छन्द पद्धति पर चलने वाली कविता का नमूना सामने रक्खा है। फिर बाद में आपने गोल्डस्मिथ के 'ट्रैवलर' नाम काव्य का भी अनुवाद खड़ी बोली पद्य में 'श्रान्त पथिक' के नाम से किया।

लेकिन खड़ी बोली से कहीं अधिक सरस रचना पाठक जी व्रजभाषा में करते थे। गोल्डस्मिथ के दूसरे काव्य-ग्रन्थ 'डेज़र्टेडविलेज' का अनुवाद 'ऊजड़-गाँव' के नाम से आपने व्रजभाषा में ही किया। ऐसा ज्ञात होता है कि पाठकजी की चित्त-वृत्ति व्रजभाषा के काव्य में अधिक रमती थी और व्रजभाषा को ही वे सत्काव्योचित मानते थे।

आपको सरकारी काम से शिमला और नैनीताल में रहने तथा वहाँ के नैसर्गिक दृश्यों के देखने के अनेक अवसर प्राप्त हुए थे और इसीलिए आपका कवि-हृदय प्रकृति-सौन्दर्य का इतना प्रेमी हो गया था।

पाठक जी प्रकृति के सुखमय रूपों के वर्णन में बड़े पटु थे। इनका 'कश्मीर-सुषमा' नामक काव्य इसका उदाहरण है। इनके समकालीनों में प्रकृति-वर्णन में कोई कवि इनसे आगे न था।

पाठकजी स्वतन्त्र विचार के काव्य-प्रणेता थे। अतः नये-नये छन्द, पद-विन्यास और वाक्य-विन्यास के प्रयोग हमें इनकी रचनाओं में बराबर मिलते हैं। कहीं-कहीं इनकी कविताओं में रहस्यपूर्ण संकेत भी मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए 'स्वर्गीय-वीणा' अवलोकनीय है।

पाठकजी अत्यन्त सरस-हृदयी कवि होने के साथ ही साथ समाज-सुधारक और स्वदेशानुरागी भी थे। शिक्षा-प्रचार और विधवाओं की दशा जैसे विषयों पर भी इन्होंने लेखनी परिचालित की है।

कश्मीर-सुषमा

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति,
पल-पल पलटति भेस, छनिक छबि छिन-छिन धारति;
विमल-अम्बु-सर-मुकुरन मँह मुख-बिम्ब निहारति,
अपनी छबि पै मोहि आप ही तन-मन वारति;

सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी,
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी,
बिहरति विविध-विलास-भरी जोबन के मद-सनि,
ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति, थिरकति, बनि-बनि

मधुर मंजु छबि-पुंज छटा छिरकति बन-कुंजन,
चितवति, रिझवति, लसति, हँसति, मुसिक्याति, हरति मन;
यह सुरूप-सिंगार रूप धरि-धरि बहु भाँतिन,
सर, सरिता, गिरि, सिखर, गगन, गह्वर, तरुवर, तृन;

पूरन करिबे काज कामना अपने मन की,
किंकरता करि रह्यौ प्रकृति-पंकज-चरनन की;
चहुँ दिसि हिम-गिरि सिखर, हरितमनि-मौलि-अवलि मनु
स्रवत सरित-सित धार, द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु;

फल - फूलन छबि-छटा छई जो बन-उपबन की,
उदित भई मनु अवनि-उदर सों, निधि रतनन की;
तुहिन-सिखर, सरिता, सर, बिपिनन की मिलि सों छबि,
छई मंडलाकार, रही चारिहुँ दिसि यों फबि—

मानहु मनिमय मौलि-माल आकृति अलबेली,
बाँधी बिधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली।
अरध चन्द्र सम सिखर-सैनि कहुँ यों छबि छाई,
मानहुँ चन्दन-धौरि, गौरि-गुरु, खौरि लगाई।

पुनि तिन सैननि बीच बितस्ता रेख जु राजति,
वैष्णव 'श्री' अरु शिव-त्रिशूल की आभा भ्राजति;
हिम-सैननि सों घिर्यौ अद्रि-मंडल यह रूरौ;
सोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुखमा-सुख- पूरौ;

बहु बिधि दृश्य अदृश्य कला-कौशल सों छायो,
रत्न - निधि नैसर्ग मनहु बिधि दुर्ग बनायो;
अथवा बिमल बटारि बिस्व की निखिल निकाई।
गुप्त राखिबे काज सुदृढ़ सन्दूक बनाई।

कै यह जादूभरी बिस्व बाजीगर-थैली
खेलत में खुलि परी, सैल के सिर पै फैली?
पुरुष-प्रकृति कौ किधौं जबै जोबन-रस आयौ,
प्रेम-केलि, रस-रेलि करन रँग-महल-सजायौ?

खिली प्रकृति-पटरानी के महलनि फुलबारी,
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार-पिटारी?
कै यह बिकसित ब्रह्म-बाटिका की कोउ क्यारी,
जोगि-राज ने यहाँ जोग-बल ऐंचि उतारी?

है सामग्री-सहित भैरवी चक्र मझारी
परिकल्पित करि धरी सक्ति - पूजन की थारी?
किधौं चढ़ायौ धाता ने भारत के मस्तक,
मया-मरालिनि-रच्यौ चारु कुसुमन कौ गुच्छक?

काम-धेनु कै रवि-हय की खुर-छाप सलौनी,
कै बसुधा पै सुधा-धार-ब्रह्म-द्रव-द्रौनी ?
परम पुरुष की पटरानी माया कौ स्यन्दन,
मंडप-छत्र उतारि धर्यौ, उतर्यौ कै नन्दन ?

कै जब लै सिव चले दक्ष-तनया के अंगन,
गिरि-शृंगन गिरि खिल्यौ प्रिया के कर कौ कंगन ?
बिष्णु-नाभि तें उग्यौ सुन्यौ जो कमल सहसदल,
कै यह सोई सुभग स्वयम्भू कौ सुजन्म-थल ?

प्रकृति-नटी कौ पटी-रहित प्रगट्यौ नाटक-घर,
कै शिव-तन्त्र सटीक खुल्यौ बिलसत टिखटी पर ?
कै त्रैलोक्य-विभूति-भरित अवधूतक-मंडल
कै तप-पुंज-प्रसूत बिस्व-सोभा-श्री-मंडल ?

सुर-पुर अरु सुर-कानन की सुठि सुन्दरताई
त्रिभुवन मोहन-करनि कबिन बहु बरनि सुनाई—;

सो सब कानन सुनी, किन्तु नैनन नहिं देखी,
जँह-तँह पोथिन पढ़ी, पै सु परतच्छ न पेखी;

सो कवियन जो कही कलित सुर-लोक निकाई
याही को अवलोकि एक कल्पना बनाई—

सुर-पुर अरु कश्मीर दोउन में को है सुन्दर
को सोभा कौ भौन, रूप कौ कौन समुन्दर ?
काकौ उपमा उचित दैन दोउन में काकी,
याकौं सुर-पुर की अथवा सुर-पुर कौं याकी ?

याकौं उपमा याही की मोहिं देत सुहावै,
या सम दूजौ ठौर सृष्टि में दृष्टि न आवै;
यही स्वर्ग, सुर-लोक, यही सुर-कानन सुन्दर
यहिं अमरन कौ ओक, यहीं कहुँ बसत पुरन्दर!

सो श्रीधर-दृग-बसी प्रेम-अम्बुद रस-दैनी,
पुन्य-अवनि, सुख-स्रवनि, अलौकिक-सोभा-सैनी;
पै सुजथारथ महिमा नहिं मोहिं शक्ति बखानन,
सहसा नहिं कहि सकहिं, रुकहिं, सहसन सहसानन;

कबि-गन कौं कल्पना-कल्प-तरु काम-धेनु सी,
मुनियन कौं तप-धाम, ब्रह्म-आनन्द-ऐनु सी;
रसिकन कौं रस-थान, प्रान, सरबस, जीवन-धन,
प्रकृति प्रेमिनी कौं सुकेलि-क्रीड़ा-कलोल-वन।

(काश्मीर सुषमा से)

पंडित श्रीधर पाठक के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—काश्मीर-सुषमा, देहरादून, स्वर्गीय वीणा।
काव्य-संग्रह—मनोविनोद, पद्य-संग्रह, जंगत-सचाई-सार।
अनुवाद—एकान्तवासी योगी, ऊजड़गाँव, श्रान्तपथिक, ऋतुसंहार।

———

पंडित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय "हरिऔध"

'हरिऔध' जी हमारे साहित्य के लब्ध-प्रतिष्ठ वयोवृद्ध महाकवि हैं। आपका जन्म वैशाख कृष्ण ३ सं० १९२२ को निजामाबाद (ज़िला आज़मगढ़) में हुआ। लगभग आधी शताब्दी से आप हिन्दी की सच्ची सेवा करते आ रहे हैं। काव्य-रचना का अभ्यास उपाध्यायजी ने अपने निवास-स्थान निज़ामाबाद में सिक्ख-सम्प्रदाय के महन्त बाबा सुमेरसिंह के यहाँ प्रायः नित्य जुड़ने वाले कवि-समाज में किया। उसी समय आपने दो नाटक "रुक्मिणी-परिणय" और "प्रद्युम्न-विजय व्यायोग" तथा तीन उपन्यास 'वेनिस का बाँका', "ठेठ हिन्दी का ठाठ" और "अध-खिला फूल" नाम से लिखे। इन उपन्यासो के द्वारा उपाध्याय जी ने यह दिखला दिया कि संस्कृत-गर्भित और ठेठ दोनों प्रकार की हिन्दी शैली पर इनका समान अधिकार है।
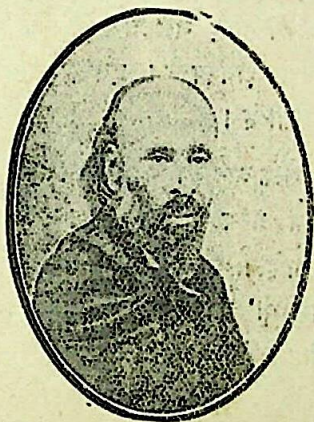
'हरिऔध' जी का मुख्य कार्यक्षेत्र खड़ी-बोली-काव्य में ही रहा है। आपने "प्रिय-प्रवास" महाकाव्य की रचना खड़ी-बोली में उस समय की जिस समय उसमें कोई भी महाकाव्य न था। कहना न होगा कि उपाध्याय जी के इस ग्रन्थ ने हिन्दी वालों को मार्ग प्रदर्शित किया और खड़ी बोली की कविता को एक कदम और आगे बढ़ा दिया।

खड़ी-बोली के क्षेत्र में प्रतिष्ठा-प्राप्ति के पूर्व उपाध्याय जी ब्रजभाषा में काव्य-रचना का अच्छा अभ्यास कर चुके थे। इधर आपने फिर उस ओर ध्यान दिया है और ब्रजभाषा की रचनाओं का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ 'रस-कलश' नाम से निकाला है। इसके विषय रस, नायिका-भेद आदि हैं। इसमें नायिकाओं के कुछ नये भेद भी बतलाये गये हैं जो कवि की नवोद्भावना-शक्ति के परिचायक हैं। इसी ग्रन्थ से यहाँ कुछ अंश आगे उद्धृत किये गये हैं।

'हरिऔध' जी संस्कृत-गर्भित शैली को अपनाने से पहले ही उर्दू छन्दों तथा ठेठ हिन्दी में भी रचना कर चुके थे। इधर इनकी लेखनी से हमें 'बोल-चाल' 'चोखे-चौपदे' और 'चुभते चौपदे' जैसे ग्रन्थ मिले हैं, जिनके हर एक पद में कोई न कोई मुहावरा अवश्य है। इनकी भाषा साधारण बोलचाल की बामुहावरा खड़ी बोली है।

उपाध्याय जी का सबसे नया सफल सत्काव्य-ग्रन्थ 'वैदेही-वनवास' है। इसी के साथ आपका दूसरा सराहनीय ग्रन्थ 'पारिजात' है। उपाध्यायजी बहुमुखी प्रतिभा के विद्वान् हैं। साहित्य, काव्य-शास्त्रादि के पूर्ण पंडित और प्रशस्त लेखक हैं। आलोचक भी आप उच्चकोटि के हैं। इस समय तो आप अप्रतिभ कवि और पंडित हैं।

स्तवन

कुंठित-कपालन की कालिमा कलित होति,
अवलोके सुललित लालिमा पदन की,
सुन्दर-सिँदूर, मंजु-गात सुख-बितरत,
दरत दुरित-पुंज दिव्यता रदन की;
'हरिऔध' सकल-अमंगल बिदलि देति,
मंगल-कलित-कान्ति मंगल-सदन की,
संकट-समूह-सिन्धु-सिन्धुता-विलोपिनी है,
बन्दनीय-सिन्धुरता सिन्धुर-वदन की।

तुरत तिरोहित अपार-उर-तम होत,
पग-नख-तारक-प्रसूत-जोति परसे,
रुचिर-बिचार मंजु-सालि बहु-बिलसत,
जन-अनुकूलता बिपुल-बारि बरसे;
'हरिऔध' सब-रस-बलित बनत चित,
दयावान-मन के सनेह-साथ सरसे,
सकल-अभाव, भाव, भूति, भव-भूति होति,
भारती-बिभूति भूतिमान-सुख दरसे।

सुकबि-समूह-मंजु-साधना-बिहीन जन,
लोक-समाराधना को साज कैसे सजि है,
बिभु की बिभूति ते बिभूतिमान बनि-बनि,
भव-साथ कर क्यों सुभावना को भजि है;

'हरिऔध' असरस उर क्यों सरस ह्वै है,
कैसे अरुचिरता अचारु-रुचि तजि है,
मेरी-मति-बीन तो मधुर-ध्वनि पैहै कहा,
एरी बीनवारी जो न तेरी बीन बजि है।

कवि-कथन

बचन-बिलास ते न जाको मन बिलसत
छहरत-छबि ते न जाकी मति घरी है,
बिबिध-रसन ते न जाको चित्त सरसत,
रुचि की रुचिरता न जाहि रुचि-करी है;
'हरिऔध' भारती न भूलि हूँ लुभैहै ताहि,
जाके उर माँहिं भारतीयता न अरी है,
बैभव मैं जाके है अभाव मंजु-भावन को,
भावुकता नाँहिं जाकी भावना मैं भरी है।

कोकिल की काकली को मान कैसे कैहै काक.
भील कैसे मंजु मुकतावलि को पोहैगो,
कैसे बर-बारिज बिलोकि मोद पैहै भेक,
बादुर बिभाकर-बिभव कैसे जोहैगो ?
'हरिऔध' कैसे 'रस-कलस" 'रुचैगो ताहि'
जाको उर रुचिर-रसन ते न सोहैगो,
आँखिन मैं बसत कलंक-अंक ही जो अहै,
कोऊ तो मयंक अवलोकि कैसे मोहैगो ?

शोक

छन-छन छीजत न देखहिं समाज-तन,
हेरहिं न विधवा छ्‌ टूक होत छतियान;
जाति को पतन अवलोकहिं न आकुल ह्वै,
भूल न बिलोकहिं कलंकी होत कुल-मान;
'हरिऔध' छिनत लखहिं न सलोने लाल,
लुटत निहारहिं न लोनी-लोनी ललनान,
खोले कछु खुली पै कहाँ हैं ठीक-ठीक खुलीं
अधखुली अजौं हैं हमारी खुली अँखियान।

काहू की ठगौरी परे ठग ह्वै गये हैं सिंग,
बन गये परम विमुख मुख कौर-कौर,
जाति को है ठोकर पै ठोकर लगति जाति,
काठ-सी कठोरता पुकारति है और-और;
'हरिऔध' करत कठिन ठकठेनी काल,
ठुकराई ठकुराइनें हैं ठाढ़ीं पौर-पौर,
है न वह ठाट, वह ठसक न, वह टेक,
ठिटके दिखात ठूँठे ठाकुर हैं ठौर-ठौर;

तावा के समान है तपत-उर तापवारो,
गरम हमारो लोहू सियरो भयो नहीं,
पीर लहि मुख पियरानो पीरवारन को,
बदन दिखात तऊँ पियरो भयो नहीं;
'हरिऔध' जोहि-जोहि निरजीव जीवन कौ,
जीवन-बिहीन मीन जियरो भयो नहीं,
जाति टूक-टूक भई, टूकौ ना मिलत माँगे,
टूक-टूक तऊ हाय! हियरो भयो नहीं।

नाविक जो नाविकता-नियम बिसारि दैहै,
बनि बीर बीरता-बिरद जो न बरिहै,
नाव को सवार ही जो कैहै छेद नाव माँहिं,
सकल-बचाव के उपाव ते जो अरि है;
'हरिऔध' बहि-बहि प्रबल बिरोध-बायु,
बार-बार पथ जो उबार को बिगरिहै;
कैसे जाति उपकार-पोत मँझधार परो
आपदा-अपार-पारावार पार करिहै।

मुनिन सरोज को दिनेस अथयो अकाल,
गुनिन-कुमुद-चन्द राहु-मुख परिगो,
'हरिऔध' ज्ञानिन को चिन्तामनि चूर भयो,
मानिन-प्रदीप हूँ को तेज-सब हरिगो;
पारस हेराइ गयो हीन-जन-हाथन कौ,
भारती को प्यारो एकलौतो तात मरिगो,
सागर सुखानो आज सन्त जन-मीनन कौ,
दीनन को हाय ! देव-पादप उखरिगो।

उत्साह

जागि-जागि केहूँ जे न जागहिं जगाए तिन्हैं,
सूखी धमनीन मैं रुधिर-धार भरिहौं,
सुधरि सुधारि कै समाजहिँ उधारि लैहौं,
परम-अधीरता निवारि धीर धरिहौं;
'हरिऔध' उबरि उबारि बरिहौं बिभूति,
बीरता अबीरता अवनि मैं बितरिहौं,
धोइ दैहौं कुजन-मयंक को कुअंक-पंक,
जाति-भाल-अंक को कलंक सब हरिहौं।

बास-हीन बिरस असंयत सनेह काहिं,
बासवारे-सुमन-सुबास लौं बसैहौं मैं,
सकल-सुपास सुख-संचन कसौटिन पै,
रंच न सकैहौं चाव-कंचन कसैहौं मैं;
'हरिऔध' जाति-हित करि हारि हौं न कबौं,
बैर-धूरि काहिं वारि-पात ह्वै नसैहौं मैं;
विविध बिरोध-बारि-निधि को सुधारि वारि
बारिधर की-सी वारि-धारा बरसैहौं मैं।

पीछे जो हटैंगे तो पगन काँहि पंगु कैहौं,
कर जो कँपैंगे तो करन को कटैहों मैं,
छिलि जैहै जो न जाति-उर के छतन तेतो,
छल धाम-छाती काँहिं छलनी बनैहौं मैं,
"हरिऔध" जो न कढ़ि पैहैं चिनगारियाँ तो,
लोचनता लोचनन केरि छीनि लैहौं मैं;
भीति ते भुरैगो तो रहैगो भेजो भेजो नाहिं,
काँपि है करेजो तौ करेजो काढ़ि दैहौं मैं।

परिवार-प्रेमिका

सुधा-सने-बैन के बिधान मैं अविधि है न,
सहज-सनेह की न साधना अधूरी है,
सब ते सरस रहि सरसति सौगुनी है,
भोरे-भोरे भावन ते भूरि भरी-पूरी है;
'हरिऔध' सौति के सुहाग ते सुहागिनी है,
सास औ ससुर की सराहना ते रूरी है,
पति-पूत-प्यार-मान-सर की मरालिका है,
परिवार-पूत-प्रेम-पयद-मयूरी है।

बर-दार बनति, उदारता निवारति है,
अनुदारता हूं मैं उदार दरसति है,
पर-पति-पूत को स्व-पति-पूत सम जानि,
पावन-प्रतीति पूत-पग परसति है;
'हरिऔध' परिवार-हित नव-बीरुध पै,
बिहित-सनेह-बर बारि बरसति है,
अनरसहूँ मैं रस-बात बिसरति नाँहिं,
रसमयी-बाल रोस हूँ मैं सरसति है।

बानी के समान हंस-बाहनी रहति बाल,
नीर-छीर विमल-बिबेक बितरति है,
सती के समान सत धारि, है सुखित होति,
बामता मैं बाम ता ते राखति बिरति है;
'हरिऔध' रमा सम रमति मनोरम मैं,
भाव अमनोरम ते लरति, भिरति है,
पूत-प्रेम-पोत पै अपार पूतता ते बैठि,
परिवार-प्यार-पारावार मैं फिरति है।

जाति-प्रेमिका

सरसी समाज-सुख-सरसिज-पुंज की है,
सुरुचि-सलिल की रुचिर सफरी सी है,
नाना-कुल-कालिमा-कलुख की कलिन्दजा है,
कल-करतूत-मंजु मालिका लरी सी है;
'हरिऔध' बहु-भ्रम-भँवर-समूह भरी,
सकल-कुरीति-सरि सबल-तरी सी है;
जाति-हित-पादप-जमात नव-जीवन है,
जाति-जन-जीवन सजीवन-जरी सी है।

भारतीय-भव-पूत-भावन-विभूति पाइ,
भावमयी अपने अभावन हरति है;
अवलोकि अवलोकनीय-बहु-वैभव को.
काल-अनुकूल अनुकूलता करति है;
'हरिऔध' भारत को भुव-सिरमौर जानि,
भावना मैं बिभु-सिरमौरता भरति है;
धारि धुर, सुधरि, समाज को सुधारति है,
धीर धरि जाति को उधारि उधरति है।

देश-प्रेमिका

गौरवित सतत अतीत-गौरवन ते होति,
गुरुजन-गुरुता है कहती, कबूलती;
मुदित बनाति अवनी-तल मैं फैलि-फैलि,
कीरति की कलित-लता को देखि फूलती,
'हरिऔध' प्रकृति-अलौकिकता अवलोक,
प्रेम के हिंडोरे पै है पुलकित भूलती;
भारत की भारती-विभूति ते प्रभावित ह्वै,
भामिनि भली है भारतीयता न भूलती।

नयन मैं नयन-विमोहन-सुमन छबि,
मन मैं बसति मधु-माधव-मधुरिमा,
कवि-कल-कंठिता है बिलसति कानन मैं,
आनन हैं अमित-महनन की महिमा;
'हरिऔध' धी मैं, धमनीन मैं बिराजति है.
बसुधा-धवल-कर-कीरति-धवलिमा,
अंग-अंग मैं है अनुराग-राग अंगना के,
रोम-रोम मैं है रमी भारत की गरिमा।

पग ते गहति पग-पग पै पुनीत पथ,
अमर-निकर-काज कर ते करति है;
गाइ-गाइ गुन-गन-सुगुन-निकेतन के,
मंजु-बानि लहि बर-बिरद-बरति है;
'हरिऔध' मानस मैं भूरि-कमनीय-भाव,
भारत की वन्दनीय-भूति के भरति है,
सुनि-धुनि-धार को परसि उधरति बाल,
धरती की धूरि लै लै सिर पै धरति है।

कहाँ है मधुर-साम-गान मुखरित-भूमि,
बानी के बिलास की कहाँ है पूत-पुलिका;
कहाँ है सकल-रस-सरस-सरोज-पुंज,
सुख-मूल-मानव-समाज-मंजु-अलिका ?
'हरिऔध' भारत-बिभव-वर-बायु-बल,
बिकच-बनै न कैसे बाला-उर कलिका;
प्रेम-सुधा बिपुल-बिमुग्ध बसुधा मैं भरि,
कहाँ पै बजी है महा-मोहिनी मुरलिका ?

धर्म-प्रेमिका

भजनीय-प्रभु के भजन किये भाव-साथ,
यजनीय-जन के यजन काज तरसे,
लोक अवलोकि पर-लोक-साधना मैं लगे,
बचे लोभ-मूल-लोक-लालसा-लहर से;
'हरिऔध' परम-पुनीत अंगना है होति,
बार-बार नैनन ते प्रेम-बारि बरसे;
धरम-धुरीन की सहज-धारना के धरे,
पग-धूरि धरम-धुरन्धर की परसे।

लालसा रखति है ललित-रुचि-लालन की,
लोक-हित-खेत कौ लुनाई ते लुनति है;
रुचिर-बिचार-उपबन मैं बिचारि बाल,
चावन के सुमन-सुहावन चुनति है;
'हरिऔध' आठौ जाम परम-अकाम रहि,
भुवनाभिराम-राम-गुनन गुनति है;
सुर-लीन मानस-निकुंज माँहि प्रेम-रली,
मुरली-मनोहर की मुरली सुनति है।

भाल पै भलाई की बिभूति-भल बिलसति,
नीकी-नीति निवसति नयन-निकाई मैं,
रसना सरस है, रहति राम-रस चाखि,
लसति बिमलता है लोचन-लुनाई मैं,
'हरिऔध' गरिमा ललित-गात मैं है लसी,
गुरुता बिराजति है गात की गोराई मैं,
लोक-हित-कामना सकल-काम मैं है कसी,
कमनीयता है बसी कामिनी-कमाई मैं।

रहस्यवादाष्टक

छबि के निकेतन है छून छिति-छोर माँहि,
काकी छबि पुंजता छगूनी छलकति है,
बन-उपबन की ललामता ललाम ह्वै ह्वै,
काकी लखि ललित-लुनाई ललकति है?
'हरिऔध' काको हेरि पादप हरे हैं होत,
कुसुमाली काको अवलोकि पुलकति है,
कौन बतरैहै, बेलि माँहि काकी केलि होति,
कली-कली माँहि काकी कला किलकति है?

मन्द-मन्द सीतल-सुगन्धित-समीर चलि,
कत प्राणि-पुंज को पुलकि परसत है,
भूरि-अनुराग-भरी ऊषा को कलित-अंक,
कत प्रति बार ह्वै सराग सरसत है ?
'हरिऔध' अन्त ना मिलत इन तन्तन को,
कत ह्वै सुहावनो दिगन्त दरसत है,
काकी सुधा-धार ते सुधाकर सरस बनि,
सारी बसुधा पै न्यारी-सुधा बरसत है ?

लहलहे काको लहे उलहे-बिटप होत,
कासों हिले लतिका ललाम ह्वै-ह्वै हिलती;
काके गौरवन ते गौरवित ह्वै लसत गिरि,
धन-रासि धरा काके बल सों उगिलती ?
'हरिऔध' होतो लोक मैं न लोक-नायक तौ,
कलिका कुसुम की बिलोकि काको खिलती,
दमक दिखात काकी दमकति-दामिनि मैं,
चाँदनी मैं, चन्द मैं, चमक काकी मिलती ?

एक तिन ही ते है अनन्तता विदित होति,
पथ-रज-कन हूँ कहत 'नेति' हारे हैं;
सत्ता की महत्ता पत्ता-पत्ता है बताये देत,
काल की इयत्ता गुने लोमस बिचारे हैं;
'हरिऔध' अनुभूति-रहित बिभूति अहै,
बिभव-पयोधि-बारि-बिन्दु लोक सारे हैं;
भव-तन मैं हैं भूरि-भूरि रवि-सोम भरे,
बिसु रोम-रोम मैं करोरौं व्योम-तारे हैं।

देहिन को सुखित सनेहिन समान करि;
पंखे अति-मंजुल-पवन के हिलत हैं;
चन्द के मनोरम-करन ते अवनि-काज,
चाँदनी के सुन्दर बिछावने सिलत हैं;
'हरिऔध' कौन कहै काके अनुकूल भये,
सीपिन मैं मोती मनभावने मिलत हैं;
कीच माँहि अमल-कमल विकसित होत,
धूरि माँहि सुमन-सुहावने खिलत हैं।

काल-अनुकूल कैसे कारज-सकल होत,
पिक कूके कैसे सारो ककुभ उमहतो;
विकसित कैसे होति कला कुसुमायुध की,
कैसे लहराति लता, पादप उलहतो;
'हरिऔध' हेतु-भूत सत्ता जो न कोऊ होति,
कुसुम-समूह कुसुमाकर क्यों लहतो;
बैहर क्यों डोलति बहन कै मरन्द-भार,
मलय-समीर मन्द-मन्द कैसे बहतो ?

फूल खिले देखे कै बिलोके हरे-भरे तरु,
भूल निज-भाव ललचाई ललकैं थकीं;
जो थल दिखातो लोक-लोचन छबीलो-लाल,
औरै छवि देखि वाँ उमंग-छलकैं छकीं;
'हरिऔध' उत भाव-हित मैं लुकत हरि,
इत सुख-मुख-जोह जोग-जुगतैं जकीं;
कित हैं लसे न, विलसे न दृग सोहैं कबौं,
आँखि मैं बसे हूँ ना विलोकि अँखियाँ सकीं।

बसि घर-बार मैं निहारे घरबारिन को,
घरी-घरी बीच घेर-घारन के घेरे ते;
तम मैं उँजोगे किये उर को उँजेरो लहि,
देखे जग-जीवन के जीवन को नेरे ते;
'हरिऔध' कहै भेद खुलत अभेद को है,
सारे फेर-फारन ते मानस को फेरे ते;
कानन के कानन की बातन को कान करि,
आँखिन की आँखिन को आँख माँहि हेरे ते।

श्री अयोध्यासिंह जी उपाध्याय के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—प्रेमाम्बु-नीरधि, प्रेमाम्बु-प्रवाह, प्रेमाम्बु-प्रस्रवण, प्रेम-प्रपंच, प्रेम पुष्पोपहार, काव्योपवन, ऋतुमुकुर, प्रिय-प्रवास, चुभते चौपदे, चोखे चौपदे, कल्पलता, बोल-चाल, पद्यप्रसून, पर्वप्रकाश, पारिजात, वैदेही वन-वास।

ब्रजभाषा—रसकलस !

गद्य-ग्रन्थ—ठेठ हिन्दी का ठाट, अधखिला फूल।

अनूदित—वेनिस का बांका।

संग्रह—सरस-संग्रह, कबीर वचनावली।

इतिहास—हिन्दी-भाषा और साहित्य का विकास।

नाटक—रुक्मिणी-परिणाम, प्रद्युम्न-विजय व्यायोग।

—:o:—

श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

'रत्नाकर' जी का जन्म भाद्रपद शुक्ल ६, सं० १९२३ वि० को काशी में हुआ। आपका वंश मुगल-काल से बराबर प्रतिष्ठित और सम्पन्न रहा है। आपने बी० ए० पास करके फ़ारसी के साथ एम० ए० की तैयारी की। कतिपय कारणों से परीक्षा न दे सके और आवागढ़ राज्य में आप सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त हुए। वहाँ से फिर डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आदेशानुसार (जो आपके पिता के बड़े मित्र थे) अयोध्या-नरेश के यहाँ प्राइवेट सेक्रेटरी के पद पर काम करने लगे। उनके स्वर्गवास के पश्चात् उनकी महारानी के भी प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। आप फारसी और उर्दू में भी रचना करते थे।

विख्यात 'सरस्वती' पत्रिका के प्राथमिक सम्पादक-मंडल में आप भी थे। व्रजभाषा-काव्य के क्षेत्र में आपका बहुत ऊँचा स्थान है और व्रज-भाषा के आप प्रकांड विशेषज्ञ और आधुनिक समय के व्रजभाषा-कवियों में श्रेष्ठ, तथा काव्य-कला मर्म्मज्ञ माने गये हैं।

'गंगावतरण' और 'उद्धव-शतक' नामक आपके दो परम-प्रशस्त काव्य-ग्रन्थ हैं। 'गंगावतरण' पर आपको अयोध्या की महारानी ने एक सहस्र और 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' ने अर्द्ध सहस्र से पुरस्कृत किया था। आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कलकत्ता-वाले अधिवेशन के सभापति

रहे। नागरी-प्रचारिणी सभा, हिन्दुस्तानी-एकेडेमी, रसिक-मंडल आदि कई संस्थाओं के आप सम्मानित सदस्य और संरक्षक भी रहे। आपने कई प्राचीन ग्रन्थों का सुन्दर सम्पादन भी किया। 'बिहारी-सतसई' पर आपकी 'बिहारी-रत्नाकर' नामक टीका श्रेष्ठ है। 'सूर सागर' का भी सम्पादन आपने बड़ी गवेषणा के साथ प्रारम्भ किया था, किन्तु आप उसे पूर्ण न कर सके।

प्राचीन-काव्य-ग्रन्थों की खोज में बड़ी उत्कट अभिरुचि थी। नन्ददास के समस्त ग्रन्थों का आप सम्पादन करना चाहते थे और बड़ी खोज से आपने उसकी सामग्री भी एकत्रित की थी। खेद है कि आपकी असामयिक मृत्यु के कारण यह कार्य भी 'सूर-सागर' के समान न हो सका।

आपकी समस्त रचनाओं का संग्रह 'रत्नाकर' नाम से काशी की 'सभा' ने प्रकाशित किया है। आपका स्वर्गवास हरिद्वार में संवत् १९८९ वि० में हुआ।

गंगावतरण

तब नृप करि आचमन-मारजन सुचि-रुचि-कारी,
प्रानायाम पुनीत साधि चित-बृत्ति सुधारी;
बहुरि अंजली बाँधि ध्यान बिधि कौ विधिवत गहि,
माँगी गंग उमंग-सहित पूरब प्रसंग कहि !

१

बद्ध-अंजली देखि भूप बिनवत मृदु बानी,
मुसकाने बिधि, आनि चित्त "चिल्लू-भर पानी";
लागे करन विचार बहुरि जग-हित-अनहित पर,
पाप-पुन्य-फल-उचित-लाभ मरजाद-थपित पर।

पुनि गुनि नर बरदान आपनौ औ संकर कौ,
सगर-सुतनि कौ साप-ताप औ तप नर-पति कौ,
सुमिरि अखिल-ब्रह्मांड-नाथ मन, माथ नवायौ;
सब संसय करि दूरि गंगा-दैवौ ठिक ठायौ;

किये सजग दिग-पाल, व्याल-पति-हृदय हढ़ायौ,
कोल, कमठ पुचकारि, भूधरनि धीर धरायौ;
स्वस्ति-मन्त्र पढ़ि, तानि तन्त्र मुद-मंगल-कारी,
लियौ कमंडल हाथ चतुर चतुरानन-धारी।

इत सुरसरि की धार धमकि त्रिभुवन भय-पागे,
सकल सुरासुर बिकल बिलोकन आतुर लागे,
दहलि दसौं दिग-पाल बिकल-चित इत-उत धावत,
दिग्गज दिग दन्तनि दबोंचि दृग भभरि भ्रमावत;

नभ-मंडल थहरात, भानु-रथ थकित भयौ छन,
चन्द चकित रहि गयौ सहित सिगरे तारा गन;
पौन रह्यौ तजि गौन, गह्यों सब भौन सनासन,
सोचत सबै सकाइ—'कहा करिहै कमलासन।'

बिन्ध्य-हिमाचल - मलय - मेरु - मन्दर - हिय हहरे,
ढहरे जदपि पषान, ठमकि तउ ठामहिं ठहरे;
थहरे गहर सिन्धु पर्व बिनहूँ लुरि लहरे
पै उठि लहर-समूह नैकु इत-उत नहिं ढहरे।

गंग कह्यौ उर भरि उमंग "तौ गंग सही मैं,
निज तरंग-बल जौ हर-गिरि हर-संग मही मैं
लै स-वेग-बिक्रम पताल-पुरि तुरत सिधाऊँ,
ब्रह्म-लोक कौं बहुरि पलटि कन्दुक-इव आऊँ।"

सिव सुजान यह जानि तानि भौंहनि मन माषे,
बाढ़ी - गंग - उमंग - भंग पर उर अभिलाषे;
भये सँभरि सन्नद्ध ; भंग कैं रंग रँगाए,
अति दृढ़ दीरघ सृंग देखि तापर चलि धाए।

बाघम्बर कौ कलित-कच्छ कटि-तट सौं नाँध्यौ,
सेसनाग कौ नाग-बन्ध तापर कसि बांध्यौ;
ब्याल-माल सौं भाल-बाल-चन्दहिं दृढ़ कीन्यौ,
जटा-जाल कौ झाल-ब्यूह गह्वर करि लीन्यौ ;

मुंड-माल, यज्ञोपवीत कटि-तट अटकाए,
गाड़ि सूल, सृंगी - डमरू तापर लटकाए;
बर बाँहनि करि फेरि चाँपि चटकाइ आँगुरिनि.
बच्छ-स्थल उमगाइ, ग्रीव उचकाइ चाय-भिनि ;

तमकि ताकि भुज-दंड चंड फरकत चित चोपे,
महि दबाइ, दुहुँ पाय कछुक अन्तर सौं रोपे;
मनु बल - विक्रम - जुगुल - खम्भ जग-थम्भन-हारे;
धीर-धरा पर अति गँभीर-दृढ़ता-जुत धारे।

जुगल कन्ध बल-सन्ध हुमकि हुमसाइ उचाए,
दोउ भुज-दंड उदंड तोलि, ताने, तमकाए;
कर जमाइ, करिहाइँ नैन नभ-ओर लगाए,
गंगागम की बाट लगे जोहन हर ठाए।

बल, विक्रम, पौरुष अपार दरसत अँग अँग तैं,
बीर, रौद्र दोउ रस उदार झलकत रँग रँग तैं;
मनहुँ भानु, सित-भानु-किरन-बिरचित पट बर को,
झलक दुरंगी देति देह-द्युति सिव-शंकर को।

वचन-बद्ध त्रिपुरारि ताकि सन्नद्ध निहारत,
दियौ ढारि बिधि गंग-बारि मंगल उच्चारत;
चली बिपुल-बल-बेग-बलित बाढ़ति बहाद्रव,
भरिति भुवन भय-भार मचावति अखिल उपद्रव।

निकसि कमंडल तैं उमंगि नभ-मंडल-खंडति,
धाई धार अपार बेग सौं बायु-बिहंडति;
भयौ घोर अति शब्द धमक सौं त्रिभुवन तरजे,
महा मेघ मिलि मनहुँ एक संगहि सब गरजे ;

भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके,
हरके वाहन रुकत नैंकु नहिं बिधि-हरि-हर के,
दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय थरके,
धुनि-प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के उर धरके।

कढ़ि-कढ़ि गृह सौं बिबुध बिबिध जानिनि पर चढ़ि-चढ़ि,
पढ़ि पढ़ि मंगल-पाठ लखत कौतुक कछु बढ़ि-बढ़ि;
सुर-सुन्दरी ससंक बंक दीरघ दृढ़ कीने,
लगीं मनावन सुकृत हाथ काननि पर दीने।

निज दरेर सौं पौन-पटल फारति, फहरावति,
सुर-पुर के अति सघन घोर घन घसि घहरावति;
चली धार धुधकारि धरा-दिसि काटति कावा,
सगर सुतनि के पाप-ताप पर बोलति धावा।

बिपुल बेग सौं कबहुँ उमँगि आगे कौं धावति,
सौ सौ जोजन लौं सुढार ढरतिहिं चलि आवति;
फटिक-सिला के बर बिसाल मन बिस्मय बोहत,
मनहुँ बिसद-छद अनाधार अम्बर मैं सोहत।

स्वाति-घटा घहराति मुक्ति-पानिप सौं पूरी,
कैधौं आवति झुकति सुभ्र-आभा रुचि-रूरी;
मीन-मकर-जल-व्यालनि की चल चिलक सुहाई,
सो जनु चपला चमचमाति चंचल-छबि छाई;

रुचिर रजतमय कै बितान तान्यौ अति बिस्तर,
झिरतिं बूँद सो झिलमिलाति मोतिनि की झालर
ताके नीचैं राग-रंग के ढंग जमाए,
सुर - बनितन के बृन्द करत आनन्द-बधाए;

बर-बिमान-गज-बाजि चढ़े जो लखत देव-गन;
तिनके तमकत तेज, दिव्य दमकत आभूषन;
प्रतिबिम्बित जब होत परम-प्रसरित-प्रवाह पर,
जानि परत चहुँ ओर उए बहु बिमल बिभाकर;

कबहुँ सु धार अपार-बेग नीचे कौं धावै,
हरहराति, लहराति, सहस जोजन चलि आवै;
मनु बिधि चतुर किसान पौन निज मन कौ पावत,
पुन्य-खेत उत्पन्न हीर की रासि उसावत;

कै निज नायक बँध्यौ बिलोकत व्याल-पास तैं,
तारनि की सेना उदंड उतरति अकास तैं;
कै सुर-सुमन-समूह आनि सुर-जूह जुहारत,
हर! हर! करि हर-सीस एक संगहि सब डारत।

छहरावति छबि कबहुँ कोऊ सित सघन घटा पर,
फबति फैलि जिमि जोन्ह-छटा हिम-प्रचुर-पटा पर;
तिहिं घन पर लहराति लुरति चपला जब चमकै,
जल-प्रतिबिम्बित, दीप-दाम-दीपति सी दमकै;

कबहुँ बायु-बल फूटि छूटि बहु बपु धरि धावै,
चहुँ दिसि तैं पुनि डटति, सटति, सिमटति चलि आवै;
मिलि-मिलि द्वै-द्वै चार-चार सब धार सुहाईं,
फिरि एकै ह्वै चलति कलित बल-बेग-बढ़ाई।

जैसैं एकै रूप प्रबल माया-बस मैं परि
बिचरत जग मैं अति अनूप बहु बिलग रूप धरि;
पै जब ज्ञान बिधान ईस सनमुख लै आवै,
तब एकै ह्वै बहुरि अमित आतम-बल पावै।

जल सौं जल टकराइ कहूँ उच्छलत, उमंगत,
पुनि नीचैं गिरि गाजि चलत उत्तंग तरंगत;
मनु कागदी कपोत गोत के गोत उड़ाए,
लरि अति ऊँचैं उलरि गोति-गुथि चलत सुहाए।

इहिं बिधि धावति, धँसति, ढरति, ढरकति, सुख देनी,
मनहुँ सवाँरति सुभ सुर-पुर की सुगम निसेनी;
बिपुल बेग-बल बिक्रम कैं ओजनि उमगाईं,
हरहराति, हरषाति, सम्भु-सनमुख जब आईं।

भई थकित-छबि छकित हेरि हर-रूप मनोहर,
ह्वै आनहिं के प्रान रहे तन धरे धरोहर;
भयो कोप कौ लोप, चोप औरै उमगाई,
चित चिक्कनाई चढ़ी, कढ़ी सब रोष-रुखाई;

छोभ-छलक ह्वै गई प्रेम की पुलक अंग मैं,
थहरन के ढरि ढंग परे उछरति तरंग मैं;
भयौ बेग उद्वेग पेंग छाती पर धरकी,
हरहरान-धुनि बिघटि सुरट उघटी हर-हर की;

भयौ हुतौ भ्रू-भंग-भाव जो भव-निदरन कौ,
तामैं पलटि प्रभाव पर्‌यौ हिय हेरि हरन कौ;
प्रगटत सोइ अनुभाव भाव औरै सुखकारी,
ह्वै थाई उतसाह भयौ रति कौ संचारी।

कृपा-निधान सुजान सम्भु, हिय की गति जानी,
दियौ सीस पर ठाम, बाम करि कै मनमानी;
सकुचति, ऐंचति अंग गंग सुख-संग लजानी,
जटा-जूट-हिम-कूट-सघन-बन सिमिटि समानी;

पाइ ईस कौ सीस-परस आनँद अधिकायौ;
सोइ सुभ सुखद-निवास बास करिबौ मन ठायौ,
कहूँ पौंन-नट निपुन गौन को बेग उघारत,
जल-कन्दुक के बृन्द पारि पुनि गहत, उछारत;

मनौं हंस-गन मगन सरद-बादर पर खेलत,
भरत भाँवरै जुरत, मुरत, उलहत, अवहेलत।
कबहुँ बायु सौं बिचलि बंक-गति लहरति धावै,
मनहुँ सेस सित-बेस गगन तैं उतरत आवै;

कबहुँ फेन उफनाइ आइ जल-तल पर राजै,
मनु मुकतनि की भीर छीर-निधि पर छबि छाजै।
कबहुँ सुताड़ित ह्वै अपार-बल-धार-बेग सौं,
छुभित पौन फटि गौन करत अतिशय उदेग सौं;

देवनि के दृढ़-जान लगत ताके झकझोरे,
कोउ आँधी के पोत होत कोउ गगन-हिंडोरे;
चढ़ति फुही की फाब फबति, फहरति छबि-छाई,
ज्यौं परबत पर चढ़त मीन बादर दरसाई;

तरनि-किरनि तापर बिचित्र बहु रंग प्रकासै,
इन्द्र-धनुष की प्रभा दिव्य दसहूँ दिसि भासै;
मनु दिगंगना गंग न्हाइ कीन्हें निज अंगी,
नव - भूषन नव-रतन-रचित सारी सत रंगी;

गंगागम-पथ माँहि भानु कैधौं अति नीकी,
बाँधी बन्दनवार बिबिध बहु पटापटी की;
सीत, सरस सम्पर्क लहत संकरहु लुभाने,
करि राखी निज अंग गंग कैं रंग भुलाने;

बिचरन लागी गंग जटा - गह्वर - बन बीथिनि;
लहति सम्भु-सामीप्य-परम-सुख दिननि निसीथिनि;
इहिं बिधि आनन्द मैं अनेक बीते सम्वत्सर,
छोड़त छुवत न बनत बनत नहिं नेह परस्पर;

यह देखि दुखित भूपति भये चित चिन्ता प्रगटी प्रबल,
अब कीजै कौन उपाय जिहिं सुरसरि आवै अवनितल।

द्रौपदी क्रन्दन

घूँटहिं हलाहल, कै बूड़ि हैं जलाहल मैं,
हम न कुनाम कौ कुलाहल करावैंगी;
कहै 'रतनाकर' न देखि पाइबे की तुम्हैं,
पीर हूँ गँभीर लिए संगही सिधावैंगी;
हाय! दुरजोधन की जंघ पै उघारी बैठि,
ऐंठि पुनि कैसे जग आनन दिखावैंगी;
बार-बार द्रौपदी पुकारति उठाए हाथ,
नाथ होत तुम से अनाथ ना कहावैंगी।

सान्तनु की सान्ति, कुल-क्रान्ति चित्र-अंगद की
गंग-सुत आनन की कान्ति बिनसाइगी;
कहै 'रतनाकर' करन-द्रोन बीरनि की,
स्रौन-सुनी धरम - धुरीनता बिलाइगी;
द्रौपदी कहति अफनाइ, राजपूती सबै
उतरी हमारी सारी माहिं कफनायगी;
द्रुपद महीपति की, पंच पतिहूँ की, हाय!
पंच पतिहूँ के पतिहूँ की पति जाइगी;

पांडु की पतोहू भरी स्वजन सभा में जब,
आई एक चीर सौं तौ धीर सब ख्वै चुकी,
कहै 'रतनाकर' जो रोइबौ हुतौ सो तबै,
धाड़ मारि, बिलखि, गुहारि सब र्‌वै चुकी,
झटकत सोऊ पट बिकट दुसासन है,
अब तौ तिहारी हूँ कृपा की बाट ज्वै चुकी,
पाँच-पाँच नाथ होत, नाथनि के नाथ होत,
हाय! हौं अनाथ होति, नाथ! बस ह्वै चुकी!

भीषम कौ प्रेरौं, कर्नहूँ कौ मुख हेरौं हाय!
सकल सभा की ओर दीन दृग फेरौं मैं,
कहै 'रतनाकर' त्यौं अन्धहूँ कैं आगैं रोइ,
खोइ दीठि चाहति अनीठिहिं निबेरौं मैं;
हारि जदुनाथ- जदुनाथ हूँ पुकारि नाथ!
हाथ दाबि कढ़त करेजहिं दरेरौं मैं;
देखौ रजपूती की सरल करतूती अब,
एक बार बहुरि 'गुपाल!' कहि टेरौं मैं।

दीन द्रौपदी की परतन्त्रता पुकार ज्यौं हीं,
तन्त्र-बिन आई मन-जन्त्र बिजुरौनि पै,
कहै 'रतनाकर' त्यौं कान्ह की कृपा की कानि,
आनि लसी चातुरी बिहीन आतुरीनि पै;
अंग पर्यौ थहरि, लहरि दृग-रंग पर्यौ
तंग पर्यौ बसन, सुरंग पँसुरीनि पै;
पंचजन्य चूमन हुमसि हौंठ बक्र लाग्यौ,
चक्र लाग्यौ घूमन उमँगि अँगुरीनि पै।

औचक चकित सब, जादव-सभा के नाथ
बोलि उठे, "कौरव-गुमान अब छूटैगौ;"
कहै 'रतनाकर' बहुरि पग रोपि कह्यौ,
पांडव बिचारनि कौ दुख अब छूटैगौ;"
अम्बर कौ, काल कौ, हली कौ, हरि-हरहू कौ,
सन्तत अनन्तता-बिधान जब छूटैगौ,
छूटैगौ हमारौ नाम भक्त-भीर-हारी जब,
द्रुपद-सुता कौ चीर-छोर तब छूटैगौ।"

भरि दृग नीर ज्यौं अधीर द्रौपदी ह्वै दीन,
कीन्यौ ध्यान कान्ह की महान प्रभुता कौ है,
कहै 'रतनाकर' त्यौं पट में समान्यौ आइ,
अकल, असीम भाइ दीन-बन्धुता कौ है;
भौचक समाज सब औचक पुकारि उठ्यौ,
गारि उठ्यौ गहब गुमान गरुता कौ है,
चौदहै अनन्त जग जानत हुतो पै यह,
पन्द्रहौ अनन्त चीर द्रुपद-सुता कौ है।

बोलि उठे। चकित सुरासुर जहाँ ही तहाँ,
'हा ! हा ! यह चीर है कै धीर बसुधा कौ है,
कहै रतनाकर' कै' अम्बर दिगम्बर कौ,
कैधौं परपंच कौ पसार बिधिना कौ है ?'
कैधौं सेसनाग की असेस कंचुली है यह,
कैधौं ढंग गंग की अभंग महिमा कौ है ?,
'कैधौं द्रौपदी की करुना कौ बरुनालय है,
पारावार कैधौं यह कान्ह की कृपा कौ है ?'

धरम-सपूत धरमध्वज रहे हैं बनि,
पारथ सकल पुरुषारथ बिसारे हैं;
कहै 'रतनाकर' असीम बल भीम हारे,
सूके सहदेव, भये नकुल नकारे हैं;
भीषम औ द्रोनहूँ निहारि मौन धारि रहे,
माष नाहिं ताकौ, ये तौ बिबस बिचारे हैं,
सालत यहै कै हाथ हालत न रावरौ हूँ,
मानौ आप नाहिं दुख देखत हमारे हैं।

अम्बर लौं अम्बर अनन्त द्रौपदी कौ देखि,
सकल सभा की प्रतिभा यौं भई दंग है,
कोऊ कहै अन्ध-भूप-मोह-अन्ध नासन कौं
चारु चन्द्रिका की चली चादर अभंग है;
कोऊ कहै कुरु-कुल-रूप-पाप-खंडन कौं
उमड़ति अखिल अखंड-धार गंग है;
मेरैं जान दीन-दुख-द्वन्द दरिबै कौं यह,
करुना-अपार-'रतनाकर'-तरंग है।

कैधौं पांडु-पूतनि कौ कछुक पखंड या मैं,
कोऊ अभिहार कै सभा कौ ज्ञान लूट्यौ है,
कैधौं कछु वाही कल-छल-'रतनाकर' कौं,
नटखट नाटक इहाँ हूँ आनि जूट्यौ है;
कहत दुसासन उसास न सँभार्‌यौ जात,
साहस हमारौ जात सब बिधि छूट्यौ है.
लागि गए अम्बर लौं अखिल अटम्बर पै,
द्रुपद-सुता कौ अजौं अम्बर न खूट्यौ है।

भीष्म-प्रतिज्ञा

भीषम भयानक पुकार्‌यौ रन-भूमि आनि,
छाई छिति छत्रिनि की गीति उठि जाइगी,
कहै 'रतनाकर' रुधिर सौं रुँधैगी धरा,
लोथनि पै लोथनि की भीति उठि जाइगी;
जीति उठि जाइगी अजीत पंडु पूतनि की,
भूप दुरजोधन की भीति उठि जाइगी,
कैतौ प्रीति-रीति की सुनीति उठि जाइगी, कै
आज हरि-प्रन की प्रतीति उठि जाइगी ?

पारथ बिचारौ पुरुषारथ करैगौ कहा,
स्वारथ-समेत परमारथ नसैहौं मैं,
कहै 'रतनाकर' प्रचार्‌यौ रन भीषम यौं,
आज दुरजोधन कौ दुख दरि दैहौं मैं;
पंचनि कैं देखत प्रपंच करि दूरि सबै,
पंचनि कौ स्वत्व पंच तत्व मैं मिलैहौं मैं,
हरि-प्रन-हारी-जस धारि कै धरा ह्वै सान्त,
सान्तनु कौं सुभट सपूत कहवैहौं मैं।

मुंड लागे कटन, पटन काल-कुंड लागे,
रुंड लागे लोटन निमूल कदलीनि लौं,
कहै 'रतनाकर' बिहुंड-रथ-बाजी-झुंड,
लुंड-मुंड लोटैं परि उछरि तिमीनि लौं,
हेरत हिराए से परस्पर संचित चूर,
पारथ औ सारथी अदूर दरसीनि लौं,
लच्छ-लच्छ भीषम भयानक के बान चले,
सबल, सपच्छ, फुफुकारत, फनीनि लौं;

भीषम के बाननि की मार इमि माँची गात,
एकहूँ न घात सव्यसाची करि पावै है;
कहै 'रतनाकर' निहारि सो अधीर दसा,
त्रिभुवन-नाथ-नैन नीर भरि आवै है;
बहि-बहि हाथ चक्र ओर ठहि जात नीठि,
रहि-रहि तापै वक्र दीठि पुनि धावै है;
इत प्रन-पालन की कानि सकुचावै, उत
भक्त-भय-घालन की बानि उमगावै है।

छूट्यौ अवसान मान सकल धनंजय कौ,
धाक रही धनु मैं न साक रही सर मैं,
कहै 'रतनाकर' निहारि करुनाकर कैं,
आई कुटिलाई कछु भौंहनि-कगर मैं;
रोकि झर रंचक अरोक वर बाननि की,
भीषम यौं भाष्यौ मुसकाइ मन्द स्वर मैं,
"चाहत बिजै कौं सारथी जौ कियो सारथ तौ,
वक्र करौ भृकुटी न चक्र धरौ कर मैं।"

बक्र भृकुटी कै चक्र-ओर चष फेरत हीं,
सक्र भए अक्र उर थामि थहरत हैं;
कहै 'रतनाकर' कलाकर अखंड मंडि,
चंडकर जानि प्रलै-खंड ठहरत हैं;
कोल कच्छ-कुंजर कहलि हलि काढ़ैं खीस,
फननि फनीस कैं फुलिंग फहरत हैं,
मुद्रित तृतीय दृग रुद्र मुलकावैं मीड़ि,
उद्रित समुद्र अद्रि भद्र भहरत हैं।

जाको सत्यता मैं जग-सत्ता कौ समस्त सत्व,
ताके ताकि प्रन कौ अतत्त्व अकुलाए हैं,
कहै 'रतनाकर' दिवाकर दिवस ही मैं,
झँप्यौ काँपि झूमत, नछत्र नभ छाए हैं;
गंगानन्द आनन पै आई मुसकानि मन्द,
जाहिजोहि वृन्दारक-वृन्द सकुचाए हैं,
पारथ की कानि, ठानि भीषम महारथ की.
मानि जब बिरथ रथांग धरि धाए हैं।

ज्यौं ही भए बिरथ रथांग गहि हाथ नाथ,
निज प्रन-भंग को रह्यो न चित चेत है;
कहै 'रतनाकर' त्यौं संग ही सखा हूँ कूदि,
आनि अर्‍यौ सौंहैं हा ! हा ! करत सहेत है;
कलित कृपा औ तृपा द्विमग समाहे पग,
पलक उठ्यौई रह्यौ पलक-समेत है;
धरन न देत आगैं अरुझि धनंजय औ,
पाछैं उभै भक्त-भाव परन न देत है।

('रत्नाकर' से

ब्रज-स्मृति

बिरह-बिथा की कथा अकथ अथाह महा,
कहत बनै न जो प्रबीन सुकबीनि सौं,
कहै 'रतनाकर' बुझावन लगे ज्यौं कान्ह,
ऊधौ कौं कहन-हेत ब्रज-जुवतीनि सौं;
गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं,
प्रेम पर्‌यौ चपल चुचाय पुतरीनि सौं,
नैकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं।

नन्द औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की,
लाड़-भरे लालन की लालच लगावती,
कहै 'रतनाकर' सुधाकर-प्रभा सौं मढ़ी,
मंजु मृग-नैनिनि के गुन-गन गावतीं;
जमुना-कछारनि की, रंग-रस-रारनि की,
बिपिन-बिहारन की हौंस हुमसावती,
सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया सुख-रासिनि की,
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती।

चलत न चार्‌यौ भाँति कोटिनि बिचार्‌यौ तऊ,
दाबि-दाबि हार्‌यौ पै न टार्‌यौ टसकत है;
परम गहीली बसुदेव-देवकी की मिली,
चाह-चिमटी हूँ सौं न खैंचौ खसकत है;
कढ़त न क्यौं हूँ हाय! बिथके उपाय सबै,
धीर-आक-छीर हूँ न धारैं धसकत है,
ऊधौ! ब्रज-बास के बिलासनि कौ ध्यान धँस्यौ,
निसि-दिन काँटे लौं करेजैं कसकत है।

रूप रस-पीवत अघात ना हुते जो तब,
सोई अब आँस ह्वै उबरि गिरिबौ करैं,
कहै 'रतनाकर' जुड़ात हुते देखैं जिन्हैं,
याद किऐं तिनकौं अँवाँ सौं घिरिबौ करैं;
दिननि के फेर सौं भयौ है हेर-फेर ऐसौ,
जाकौं हेरि-फेरि हेरिबोई हिरिबौ करैं,
फिरत हुते जू! जिन कुंजनि मैं आठौ जाम,
नैननि मैं अब सोई कुंज फिरिबौ करैं।

गोकुल की गैल-गैल, गैल-गैल ग्वालन की,
गोरस कैं काज लाज, बस कै बहाइबौ,
कहै 'रतनाकर' रिझाइबौ नबेलिनि कौ,
गाइबौ-गवाइबौ औ नाचिबौ नचाइबौ;
कीबौ स्रमहार मनुहार कै बिबिधि-बिधि,
मोहिनी मृदुल, मंजु बाँसुरी बजाइबौ,
ऊधौ सुख-सम्पति-समाज ब्रज-मंडल के,
भूलैं हूँ न भूलैं भूलै हमकौं भुलाइबौ।

मोर के पखौवनि कौ मुकट छबीलौ छोरि,
क्रीट मनि-मंडित धराइ करिहैं कहा?
कहै 'रतनाकर' त्यौं माखन सनेही बिनु,
षटरस-व्यंजन चबाइ करिहैं कहा?
गोपी-ग्वाल-बालनि कौं झौंकि बिरहानल मैं,
हरि सुर-बृन्द की बलाइ करिहैं कहा?
प्यारौ नाम गोबिँद-गुपाल कौ बिहाय हाय!
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा?

कहत गुपाल, माल मंजु मनि-पुंजन की,
गुंजनि की माल की मिसाल छबि छावै ना ;
कहै 'रतनाकर' रतन मैं किरीट अच्छ,
मोर-पच्छ अच्छ-लच्छ-अंसहू सु भावै ना ;
जसुमति मैया की मलैया अरु माखन कौ,
काम-धेनु-गोरस हू गूढ़ गुन पावै ना ;
गोकुल की रज के कनूका औ तिनूका सम,
सम्पति त्रिलोक की बिलोकन मैं आवै ना।

राधा-मुख-मंजुल सुधाकर के ध्यान ही सौं,
प्रेम-'रतनाकर' हियैं यौं उमगत है ;
त्यौं ही बिरहातप प्रचंड सौं उमंडि अति,
ऊरध उसाँस कौ झकोर यौं जगत है ;
केवट बिचार कौ बिचारौ पचि हारि जात,
होत गुन-पाल ततकाल नभ-गत है,
करत गँभीर धीर-लंगर न काज कछू,
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है।

सील-सनी सुरुचि सुबात चलै पूरब की,
औरै ओप उँमगी दृगनि मिदुराने तैं,
कहै 'रतनाकर' अचानक चमक उठी,
उर घन-स्याम कैं अधीर अकुलानै तैं ;
आसाछन्न दुरदिन दीस्यौ सुर-पुर माँहिं,
ब्रज मैं सुदिन बारि-वृन्द हरियाने तैं,
नीर कौ प्रवाह कान्ह-नैननि कैं तीर बह्यौ,
धीर बह्यौ ऊधौ-उर-अचल रसाने तैं।

प्रेम-भरी कातरता कान्ह की प्रगट होत,
ऊधव अबाइ रहे ज्ञान-ध्यान सरके ;
कहै 'रतनाकर' धरा कौ धीर धूरि भयौ,
भूरि-भीति-भारनि फनिंद-फन फरके ;
सुर, सुर-राज सुद्ध-स्वारथ-सुभाव-सने,
संसय समाए धाए धाम बिधि-हर के ;
आई फिरि ओप ठाम-ठाम ब्रज-गामनि के,
बिरहिन बामनि के बाम अंग फरके।

उद्धव-कथन

हेत-खेत माँहिं खोद खाँई सुद्ध स्वारथ की,
प्रेम-तृन गोपि राख्यौ तापै गमनौ नहीं,
करनी प्रतीति-काज करनी बनावट की,
राखी ताहि हेरि हियैं हौंसनि सनौ नहीं ;
घात मैं लगे हैं ये बिसासी ब्रजबासी सबै,
इनके अनोखे छल छन्दनि छनौ नहीं,
बारनि कितेक तुम्हैं बारन कितेक करैं,
बारन-उबारन ह्वै बारन बनौं नहीं।

पाँचौ तत्व माँहि एक सत्व ही की सत्ता सत्य,
याही तत्व-ज्ञान कौ महत्व स्रुति गायौ है ;
तुम तौ बिबेक 'रतनाकर' कहौ क्यौं पुनि,
भेद पंच-भौतिक के रूप मैं रचायौ है ;
गोपिन मैं, आप मैं, बियोग औ सँजोगहू मैं,
एकै भाव चाहिए सचोप ठहरायौ है ;
आपु ही सौं आपु कौ मिलाप औ बिछोह कहा,
मोह यह मिथ्या सुख-दुख सब ठायौ है।

दीपत दिवाकर कौं दीपक दिखावैं कहा,
तुम सन ज्ञान कहा जानि कहिबौ करैं ?
कहै 'रतनाकर' पै लौकिक लगाव मानि;
मरम अलौकिक की थाह थहिबौ करैं ;
असत असार यां पसार मैं हमारी जान,
जन भरमाये सदा ऐसैं रहिबौ करैं ;
जागत औ पागत अनेक परिपंचनि मैं,
जैसे सपने मैं अपने कौं लहिबौ करैं ।

कृष्णोत्तर

हा ! हा ! इन्हैं रोकन कौं टोक न लगावौ तुम,
बिसद बिवेक - ज्ञान - गौरव - दुलारे ह्वै,
प्रेम 'रतनाकर' कहत इमि ऊधव सौं,
थहरि करेजौ थामि परम दुखारे ह्वै ;
सीतल करत नैकु ही-तल हमारौ परि,
बिषय-बियोग-ताप-समन पुचारे ह्वै ;
गोपिन के नैन-नीर-ध्यान-नलिका ह्वै धाइ,
दृगनि हमारैं आइ छूटत फुहारे ह्वै ।

प्रेम-नेम-निफल-निवारि उर-अन्तर तैं,
ब्रह्म-ज्ञान आनँद-निधान भरि लैहैं हम ;
कहै 'रत्नाकर' सुधाकर-मुखीनि-ध्यान,
आँसुनि सौं धोइ जोति जोइ जरि लैहैं हम ;
आवौ एक बार धारि गोकुल-गली की धूरि,
तब इहिं नीति की प्रतीति धरि लैहैं हम ;
मन सौं, करेजे सौं, स्रवन-सिर-आँखिन सौं,
ऊधव तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम ।

बात चलैं जिनकी उड़ात धीर धूरि भयौ,
ऊधौ मन्त्र फूंकन चले हैं तिन्हैं ज्ञानी ह्वै ,
कहै 'रत्नाकर' गुपाल कैं हिये मैं उठी,
हूक मूक भायनि की अकह कहानी ह्वै ;
गहबर कंठ ह्वै न कढ़न संदेस पायौ,
नैन-मग तौलौं आनि बैन अगवानी ह्वै ,
प्राकृत प्रभाव सौं पलट मनमानी पाइ,
पानी आज सकल संवार्‌यौ काज बानी ह्वै ।

ऊधव कैं चलत गुपाल-उर माँहि चल,-
आतुरी मची सो परै कहि न कबीनि सौं,
कहै 'रत्नाकर' हियौ हूँ चलिबै कौं संग,
लाख अभिलाष लै उमहि बिकलीनि सौं ;
आनि हिचकी ह्वै गरैं बीच सकस्यौई परै,
स्वैद ह्वै रस्यौई परै रोम-झँझरींनि सौं ;
आनन-दुवार तैं उसाँस ह्वै बढ्यौई परै,
आँस ह्वै कढ्यौई परै नैन-खिरकीनि सौं ।

(ऊधव-शतक से)

श्री रत्नाकर जी के ग्रन्थ

काव्य—हरिश्चन्द्र, हिंडोला, कल-काशी, गंगावतरण, ऊधव-शतक ।

मुक्तक—श्रृंगार-लहरी, गंगाविष्णु-लहरी, रत्नाष्टक, वीराष्टक, द्रौपदी क्रंदन, भीष्माष्टक, प्रकीर्ण पद्यावली ।

सम्पादित—हम्मीरहठ, हिततरंगिणी, कंठाभरण, बिहारी-रत्नाकर, सूर-सागर (कुछ अंश)

रीति-ग्रन्थ—घनाक्षरी-नियम-रत्नाकर !

आपकी समस्त रचनाओं का संग्रह है—"रत्नाकर"

लाला भगवानदीन 'दीन'

'दीन' जी का जन्म ज़िला फतेहपुर के बरवट ग्राम में श्रावण शुक्ल ६, संवत् १९२३ वि० में हुआ था। इनके पूर्व-पुरुष रायबरेली में रहा करते थे। सन् ५७ के पश्चात् ये लोग ज़िला फतेहपुर में आ बसे। ११ वर्ष की अवस्था में 'दीन' जी की माता का देहान्त हो गया। इनकी शिक्षा एफ० ए० के आगे न हो सकी। आप कुछ दिन तक कायस्थ पाठशाला के अध्यापक रह कर छतरपुर के महाराजा हाई स्कूल में नियुक्त हो गये। वहाँ इनकी पहली स्त्री का देहान्त हो गया। इनकी दूसरी स्त्री प्रसिद्ध कवियित्री बुन्देला-बाला थीं।
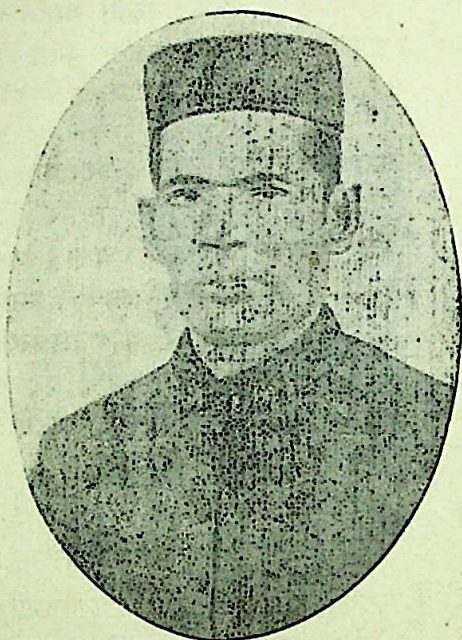
बाल्यकाल से ही हिन्दी-कविता की ओर लाला जी की प्रवृत्ति थी। उर्दू में भी आप 'रोशन' उपनाम से रचना किया करते थे।

छतरपुर से 'दीन' जी सेन्ट्रल-हिन्दू-कालेज काशी में फारसी के शिक्षक होकर आये। वहीं नागरी-प्रचारिणी-सभा के प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन भी करने लगे। इसी समय इन्होंने 'वीर-पंच-रत्न' नामक वीर-काव्य लिखा। 'हिन्दी-शब्द-सागर' के सम्पादक-मंडल में भी लाला जी ने काम

किया। तदनन्तर हिन्दू-विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक हुए। साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं के लिए इन्होंने 'हिन्दी-साहित्य-विद्यालय' की स्थापना की, जो अब तक अपना कार्य कर रहा है। कुछ दिनों तक आपने गया की 'लक्ष्मी' नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया।

लाला जी समस्या-पूर्ति-कला में बड़े निपुण थे और अलंकार आदि के अच्छे मर्म्मज्ञ। कहना चाहिए कि आप लेखक, समालोचक, सम्पादक, अध्यापक, व्याख्याता और कवि होकर अच्छे साहित्यकार थे।

लाला जी ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में सुन्दर कविता करते थे। हाँ ब्रजभाषा के आप पूर्ण पक्षपाती थे। आपकी भाषा सरल, सबल और भावपूर्ण रहती है। शैली प्रायः अलंकृत तथा कला-पूर्ण है। चातुर्य और चमत्कार आपको प्रिय था।

लाला जी सरल प्रकृति के स्पष्टवादी, भावुक और गुण-ग्राही थे। साहित्यानुराग आपमें खूब था, प्रमोद-प्रिय और अध्यवसायी भी थे। आपके कोई सन्तान नहीं है। लाला जी का देहावसान श्रावण शुक्ल ३, संवत् १९८७ वि० को काशी में हुआ।

मेघ-स्वागत

स्वागत ! हे रस-रासि रसिक-मन मोद उभारन,
स्वागत ! सघन पयोद चंड-कर-ताप-निवारन ;
स्वागत ! सुधा-समूह जगत-जन-दीनन-दाता,
स्वागत ! धाराधरन धराधर अहमिति-हाता ;
हे अम्बरचारी सरस - वर, प्रिय - दरसन, सन्ताप-हर,
जन 'दीन'-हीन चातक सरिस, स्वागत करत पसारि कर !
वे चतुरानन चतुर वेद-धुनि हरिहिं सुनावत,
तुम करि धुनि गम्भीर सुरस चौमुख बरसावत ;
वे निज कला पसारि जगत-जीवन उपजावत,
तुमहूँ जीवन-दानि बने निज बिभव दिखावत ;

वे अज कहाय, कमलज बने, कमलन के सुहृद अति,
हे रस-निधि ! हे घनस्याम ! तुम, प्रजापतिहु के प्रजापति।

पवन-तनय हनुमान राम की आयसु पाई,
सीता-खोजन-काज सकति आपनि दरसाई;
तेरे जनक गँभीर सिन्धु की लाँघो सीमा,
तब ते विषधर-सरिस तुमहुँ करि क्रोध असीमा;

सोइ बैर चुकावन हेत तुम, पवन सीस नित पद धरत,
हे घन-बर ! तुम हनुमान ते कछुक सबल ही लखि परत।

वे सूछम ते थूल, थूल ते लघु ह्वै जाते,
तुम सूछम ते अमित रंग आकृति धरि भाते;
वे व्यापक सर्वत्र, तुमहुँ सर्वत्र बिहारी,
वे निरमल रस एक, तुमहुँ निरमल अविकारी;

जन ज्ञानी उनको लखत हैं, तुम बिज्ञानिन-मन हरत,
हे घन ! तुम निरगुन ब्रह्म ते, कछुक प्रबल ही लखि परत।

वे पीताम्बर-धरन, तुमहुँ नित चपला धारी,
वे पहिरत बन-माल, इन्द्र-धनु तव छबिकारी,
वे सिर धारत पंख, मोर तुम पर बलिहारी,
वे गोपिन सुखदानि, तुमहुँ गो-कुल-सुखकारी;

वे स्यामा को सुमनस हरत, तुम स्यामा सी छबि करत,
हे घनवर ! तुम श्रीकृष्ण ते, कछुक प्रबल ही लखि परत।

वे रबि-कुल-संजात तुमहुँ बर रबि-कर-जातक,
वे निसिचर-दल-दमन, तुमहुँ निसिचर-पति-हातक;
वे धनुधर प्रख्यात, तुमहुँ सुमनस-धनुधारी,
उनकी सुछबि अथोर, सरिस तन आभ तिहारी;

वे सदल बाँधि अम्बुधि तरे, तुम बिन स्रम सागर तरत,
हे घन-बर ! तुम श्रीराम ते, कछुक प्रबल ही लखि परत।

स्वागत ! हे प्रिय मेघ ! भले आये तुम भाई,
हरषे मेढक, मीन, मोर, मानव मुद पाई;
चातक-बोलनि-ब्याज धरा यह देत बधाई,
गोकुल स्वागत करत सूँधि निज सीस उठाई;
निज मुकुट फेंकि नग-राज ये, कर पल्लवन डोलाय द्रुम,
सब स्वागत करत पयोद ! तव, आओ-आओ मित्र ! तुम !

रामगिर्याश्रम

राम-सैल-सोभा अति सुन्दर बरनि सकै कवि को है,
जाके रूप अनूप बिलोकत सुर-नर को मन मोहै,
राम-लखन-सीता-पद अंकित किधौं भूमि तल सोहै,
किधौं त्रिपुंड-सहितअतिसोभितभाल बिन्ध्य-गिर को है ?

सीतल-सुरभित-मन्द पवन नित बहुत हुलास उभारै,
प्रानायाम बायु कै बिन्ध्या-दरी नासिकन झारै,
झर-झर-झर-झरनन-रव गूँजत खग-मृग अटत हुँकारैं,
किधौं बिन्ध्य-जोगीश ध्यान-रत प्रनव मन्त्र उच्चारैं ?

ऋषि-मुनि कृत कल साम-गान यह किधौं प्रमोद पसारै,
ध्यान-मगन जोगीस बिन्ध्य धौं सोहम सब्द उचारै ?
सुकृती जन कृत होम-धूम की किधौं सुगन्धि-घटा दै,
किधौंबिन्ध्यगिरिजोगि-राज की अनुपम जटिल जटा है ?

सोहत सुभ्र तुंग सिखरन पैं घन बिचित्र-छबि-धारी,
किधौं बिन्ध्य-दरसन-हित आयेसुरचढ़िबिबिध सवारी ?
संकुल-लता बिटप छाये घन, रबि-कर निकर न पैठे,
किधौं बिन्ध्य लोहँड़ा औंधाये मुनि लोमस बनि बैठे ?

सुन्दर सीतल सुच्छ समाकृति फटिक-सिला मन मोहैं,
किधौं बिन्ध्य मुनिवर के अनुभव सुच्छ सुदृढ़ पै सोहैं;
बिमल जलासय-निकटजीव सब निज-निज ताप बुझावैं,
किधौंबिन्ध्यगिरि सिद्धराज तें सब निज रुचि रस पावैं ?

सरद समय दिन रैन जलासय कमल-कुमुद युत सोहैं,
मनो सान्त-रस-पूर्न भगत-मन रहत सदा बिकसोहैं;
सुस्थिर-बिमलसरन महँ परि निसिनभतरु-गनप्रतिछाया,
ज्यों हरिजन के बिमल हृदय महँ बपु-बिराट दरसाया ?

हिम-ऋतु पाय तुंग सिखरन पै, धवल हिम-छटा छावै,
मानो नभ बिन्ध्यहिं तपसी गुनि कम्बल धवल ओढ़ावै;
अथवा प्रबल देखि कलि-कालहिं निज मन भीति बढ़ावै ?
राम-चरन-आस्रम-हित गिरि पै बटुरि सतोगुन आवै ?

सिसिर काल महँ तृन-तरु-बृतती, निज-निज पत्र गिरावैं,
जैसे जन नव बसन धरन-हित, जीरन बसन बिहावैं;
रूखी बायु बहै निसि-बासर, तजैं रूख चिकनाई,
त्यों तपसिन के हिय नितबाढ़ै जग ते अमित रुखाई ?

ऋतु बसन्त तृन तरु बल्लरि सब नव दल-फूलन छावैं,
ज्यों सुकृती जन राम-कृपा ते सुख-सम्पति-जस पावैं;
अरुन-सुचिक्कन-कोमल दल जुत बिटप बल्लरी सोहैं,
दिनकर-करन परसि चिलकैं अति जग-जन दीठिनि मोहैं ?

कूजत पिक, गूँजति अलि-माला कलरव जन-मन मोहैं,
ज्यों उदार जन-द्वार सदा ही जय-जय धुनि जुत सोहैं;
बन-बासी खग-मृग उमंग जुत दम्पति भाव जनावैं,
जननी-जनक होन की इच्छा सब मन बसै बतावैं !

ऋतु निदाघ सूखे तृन संकुल निर्झर-जल पतराहीं,
ज्यों हरि-हित तप करत विषय-रस-स्रोत सकल सकुचाहीं;
आँवाँ-सम गिरि, सिला तवा-सम, फिरैं बघूर उड़ानें,
ज्यों हरि-बिमुख जीव सन्तापित कबहुँ न सुथिर थिरानें;

आक-पलास चंडकर-तापित, उमँगि उमँगि उलहाते;
ज्यों प्रेमी प्रीतम-कर-ताड़ित हृदय अधिक सरसाते!
कीचक प्रथम सुनाय मधुर सुर बहुरि दवारि लगावै,
दीपक राग गानकारिन कहँ मानहुँ सीख सिखावैं;

बरसा पाय जीव-तृन संकुल गिरि निज सिर पै धारै,
मनहुँ प्रजापति प्रजा-समूहनि निज अंकनि बैठारै!
बिबिध धातु-रंजित बरसा-जल इत उत बहै अपारा,
हरि-रस पाय निकारैं जन जिमि राग-द्वेष की धारा;

सुर-धनु-सहित श्यामघन परसत, तुंग सिखर यों सोहै,
नन्दलाल को सुभग भाल ज्यों सुमुकुट लखि मन मोहै;
गिरि अंचल को सब जल बहि-बहि जुरत सरोवर माहीं,
जैसे सकल सुकृत-फल आपुहिं आवत हरि-जन पाहीं;

लहि बरसा-जल ठूँठ-ठूँठ तरु अंकुर नवल निकारैं,
ज्यों हरि-कृपा मुदित जन 'दीन' हु पुनि सम्पति-सुख धारैं;
कबहुँ अमोलक धातु-रतन कहुँ, भीलन कहँ मिलि जाहीं;
जैसे साँचे राम-दास कहुँ अनायास दरसाहीं;

षट ऋतु राति-दिवस जेहि अवसर जहाँ दीठि ह्वै जावै,
तहँ मनोरंजक सामग्री बिबिधि भाँति की पावै;
सब सुखमय साकेत त्याग कै रहे राम जहँ आई,
तेहि गिरि, तेहि आश्रम की महिमा कहै 'दीन' किमि गाई!

कोकिल-कृष्ण

दोऊ पखी, जग. पूँछ दुहून की, दोऊ कबौं-कबौं देत दिखाई,
रागी दोऊ, अनुरागी दोऊ-दोऊ अंड रचैं पै रहैं अरगाई;
बौरे रसालन चाहैं कोऊ, कबि-जूथ दुहून की कीरति गाई,
"दीन" भनै, करि ध्यान बिलोकहु, कोकिल-कृष्ण में भेद न भाई।

जीवन-संग्राम

स्वारथ के रथ घहरात हैं घनेरे जहाँ,
चंचल चलाक चित्त घोरे सहगाम हैं;
मार-मद-मोह हैं मतंग मतवारे डटे,
पोढ़े पात-पुंज ही पदाती बल-धाम हैं;
धोखे, दगाबाजी, छल, कपट के तेगे चलैं,
बरछी बिपत्तिन की चलैं अबिराम हैं;
'दीन कवि' रातौं-दिन होत ही रहत देखौ,
बिकट महान जग जीवन-संग्राम हैं।

मिलन को आवैं धाय रसवती बहु,
उठतीं तरंगैं मकरध्वज को ग्राम है;
अमृत-कलस कहुँ, अनल अपार कहुँ,
हय-गय-रतन की छटा अभिराम है।
गायन को सब्द कहूँ, रुदन को सोर अति,
कोऊ झप मारै, कोऊ करत बिराम है;
ससुर को धाम अभिराम, कैधौं पारावार,
कैधौं जग-जीवन, कै बिकट संग्राम है ?

ताजमहल

कैधौं बासुकी को अंड खंड ह्वै पर्यो है आय,
चारिहू मीनार सो सँपोलन-समाज है;
चारि भुजा धारिकै बिराजो किधौं भूत-नाथ,
जमुना निकट बहै सोई नागराज है;
'दीन' कबि कैधौं चारि दन्त-जुत देखियत,
व्रज-तट इन्द्र-गज-मस्तक दराज है;
जग के समस्त सौध-सन्धन को सिर-ताज,
भारत में राजि रह्यो आगरे को ताज है।

(नवीन बीन से)

लाला भगवान दीन के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—वीर-पंचरत्न, नवीन बीन, दीन।

टीका—केशव-कौमुदी, प्रिया-प्रकाश, विहारी, बोधिनी, सूक्ति-सरोवर।

संकलन—सूर-पंचरत्न, केशव पंचरत्न।

रीति-ग्रन्थ—अलंकार-मंजूषा, व्यंगार्थ मंजूषा।

—o—

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

'पूर्ण' जी का जन्म संवत् १६२५ में कानपुर में हुआ। शिक्षा-काल समाप्त कर इन्होंने जन्म-स्थान कानपुर में ही वकालत करना प्रारम्भ किया। इनका समय अपने इसी एक काम में न लग कर विभिन्न साहित्यिक, सामाजिक और धार्मिक कार्यों में भी व्यतीत होता था। इन्हीं के उत्साह का यह फल था कि कानपुर में काव्य-साहित्य की अच्छी चर्चा होने लगी। 'पूर्ण जी' ने ही मरण-प्राय 'रसिक-समाज' को बचा कर उसे फिर से जीवन-दान दिया। इस के अतिरिक्त इनके सतत परिश्रम के फल-स्वरूप इन्हें और भी कई प्रकार की सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं को अस्तित्व में लाने का श्रेय प्राप्त हुआ।

'पूर्ण' जी ने नवीन और प्राचीन दोनों प्रकार की कविताएँ की हैं। हाँ, विषय की दृष्टि से दोनों में साम्य है। ये शृंगार रस के विशेष प्रेमी तो न थे; फिर भी शृंगार-विषयक इनकी जो थोड़ी सी रचनाएँ मिलती हैं उनमें भावुकता और सरसता का सुन्दर सम्मिश्रण पाया जाता है। इनकी कविता के मुख्य विषय, भक्ति, वेदान्त, ऋतु-वर्णन आदि हैं। इसके अतिरिक्त स्वदेशी आन्दोलन, मातृ-भाषा आदि पर भी इन्होंने रुचिर रचनाएँ की हैं।

भक्ति-सम्बन्धिनी कविताओं में इनके हृदय का स्वाभाविक भावोद्रेक मार्मिक मंजुलता के साथ प्रकट हुआ है। प्रकृति-चित्रण इनकी लेखनी

द्वारा सजीव और साकार हो सका है। इससे इनका प्रगाढ़ प्रकृति-प्रेम प्रकट होता है। अपनी ऋतु-वर्णन वाली कविताओं में इन्होंने भावुक सहृदयता के साथ प्रथम तो ऋतुओं की छटा का आनन्दोनुभव भी किया और कराया है और फिर काव्योचित ढंग से उस आनन्दानुभूति का वर्णन भी कर दिया है। प्रकृति-वर्णन की पश्चिमी प्रणाली से भी ये ख़ूब परिचित मालूम होते हैं।

राय देवीप्रसाद की भाषा सरल, सरस, मुहावरेदार, लोकोक्तियों से पूर्ण और व्याकरण-सम्मत होती थी। व्यर्थ का अलंकार-प्रयोग इन्हें अप्रिय था। निरीक्षण-प्रधान कवि होने के कारण इनके काव्य में कहीं-कहीं बिल्कुल नयी उपमाओं का भी प्रयोग मिलता है। यह हिन्दी साहित्य सम्मेलन के गोरखपुर वाले अधिवेशन के सभापति भी मनोनीत हुए थे। पूर्ण जी का निधन संवत् १९७२ में हुआ।

सरस्वती-वन्दना

कुन्द घनसार चन्द हू तें अंग सोभावन्त,
भूखन अमन्द त्यों ब्रिदूखत हैं दामिनी;
कंज-मुखो कंज-नैनी, बीन कर-कंज धारे,
सोहै कंज-आसन, सुरी हैं अनुगामिनी;
भाव-रस-छन्दन की, कविता निबन्धन की,
'पूरन' प्रसिद्ध सिद्ध सिद्धन की स्वामिनी;
जै-जै मातु बानी विस्त्र-रानी बरदानी देवि,
आनँद-प्रदानी कमलासन की भामिनी!

कुन्द-कुल-चाँदनी में, 'पूरन' कुमोदिनी में,
सेत बारि-जात-पारिजात की निकाई में ;
गंगा की लहर में, छहर माँहि छीरधि की,
चन्द तापहर में, सुधा सुघराई में ;
चित्त की बिमलता में, कला में, कुसलता में,
सत्य की धवलता में, काव्य की लुनाई में ;
भासमान बानी ग्यान-ध्यान के समागम में,
गूढ़ निगमागम-पुरान-समुदाई में ।

हरि-जस-पावस में, कहरै सिखी-सी तु ही,
बेद-कुसुमाकर में कूजती पिकी-सी है ;
तू ही सुखदानी रस-धर्म की कहानी माँहिं,
कर्म-बीथिका में बानी दीपिका-सी दीसी है ;
नीति-छीर-धारा में उदारा नवनीत तू ही,
मेधा-मेघमाला में बसति दामिनी-सी है ;
ग्यानिन की प्रतिभा, सुमति कबि-नाथन की,
गायन की सिद्धि तेरे हाथनि बिकी-सी है ।

सनक, सनन्दन, जनक, ब्यास-नन्दन से,
रहत सदा से सदा सुखमा-सराहन के ;
ब्रह्मा-अबिनासी बिस्नु रहैं अभिलासी बने,
भारती को महिमा-समुद्र अवगाहन के ;
'पूरन' प्रकास ही की मूरति-सी भासमान,
नेमी है दिनेस से चरन चारु चाहन के,
मोदप्रद सुखद बिसद जोई 'हंसपद',
सेवै पद-कंज सो बहाने हंस-बाहन के ।

'पूरन' समूह सुर-सन्तन-प्रतापिन को,
तेरे पद-पंकज के प्रेम में पगो करै,
पाय भरपूर ग्यान, त्यागि भय, भाग-भरो,
भारती-भवन्ती भक्त भव तें भगो करै;
लगन लगाय नीके अपने सरूप माहिं,
दिन-दिन माया तें बिरागी बिलगो करै,
तेरी ही कृपा सो जग जागरूक प्रतिभा की,
जगमग जोति उर जोगी के जगो करै ।

बसन्त-ऋतु

सुमन रँगीले चटकीले छिति छहरत,
सघन लतान की ललित सोभा न्यारी है,
गुंजत मलिन्द-पुंज मंजु कुंज-कानन में,
सीतल-सुगन्ध-मन्द डोलत बयारी है;
गावत सरस बोल गोल वह पंछिन के,
'पूरन' बिलोकि छबि उपमा बिचारी है,
ईस भगवन्त को बिरद बर गायन को,
सन्त श्री बसन्त गान-मंडली सँवारी है ।

ग्रीष्म-ऋतु

सेस फुफकार की बतावत है भार कोऊ,
कोऊ कला भाखत है प्रलय कृसानु की,
रुद्र-रस-बैन कोऊ, संकर को तीजो नैन,
उघरो बतावै कोऊ, ताप अघवानु की,
ग्रीषम की भीषम तपन देखी 'पूरन' जू,
मन में बिचारि यह बात अनुमानु की,
आवा-सी अवनि है, पजावा-सी पवन लेति,
दावा सी लिखाए बाजदावा धूप भानु की ।

तोरे देत तुंग तरु, झार-बन झोरे देत,
फोरे देत कान धुनि, आँधिन महान की,
ताये देत थल को, जलासय जराये देत,
जग हहराये देत, लूक बे प्रमान की;
घूमि भ्रमबात, भूत-दूत-से चहूँघा भूमि
फेरत दुहाई-सी, निदाघ दुखदान की,
ग्रीषम की अन्धाधुन्ध भीषम कही ना जात,
धूरि झोंक कीन्हीं मन्द आभा चन्द-भान की।

दावा के अहारी! अघासुर के प्रहारी,
जिन झोली बिस-झार काली-फनन महान की,
ग्रीषम सुखद चाँदनी में ब्रजचन्द सोई,
काहे जू तपत सुधि त्यागे खान-पान की;
ललिता कहत हँसि बैन वर बिंग बारे,
'पूरन' बिलोकि गति आतुर सुजान की;
'प्यारे तन लागी धूप जेठो-वृषभान कीधौं,
कोपी रावरे पै आजु बेटी वृषभान की?'

वर्षा-ऋतु

चातक-समूह बैठे बोलन को बाए मुख,
नाचन को मोर ठाढ़े पाँव ही उठाए हैं;
'पूरन' जी पावस को आगम सुखद जानि,
आनँद सों बेलिन के हिये लहराए हैं;
द्रोही द्रुम-जाति केरे! अरक-जवास एरे!
तेरे जरिबे के अब द्यौस नियराए हैं;
ही-तल-मही-तल को सीतल करनहारे,
देखु कैसे प्यारे घन कारे घेरि आए हैं।

गाजैं मेघ कारे, मोर कूकैं मतवारे, रटैं
पपी-बृन्द न्यारे, जोर मारुत जनावती;
इन्द्र-चाप भ्राजै, बक-अवली बिराजै छटा,
दामिनि की छाजै, भूमि हरित सुहावती;
'पूरन' सिँगार साजि सुन्दरी-समाज आज,
झूलती मनोहर मराल मंजु गावती,
चन्द बिनु पावस में जानि कै सुधा की हानि,
मानो चन्द-मंडली पियूष बरसावती।

झूमि-झूमि लोनी-लोनी लतिका लवंगनि की,
भेंटती तरुन सों पवन मिस पाय-पाय,
कामिनी-सी दामिनी लगाए निज अंक तैसे,
साँवरे बलाहक रहे हैं नभ छाय-छाय;
घनस्याम प्यारी बृथा कीन्हों मान पावस में,
सुनु तो पपीहा की रटनि उर लाय-लाय;
पीतम-मिलन अभिलासी वनिता-सी लखौ,
सरिता सिधारी ओर सागर के धाय-धाय।

भाँति-भाँति फूलन पै भूलन भ्रमर लागे,
कालिँदी के कूलन पै कुंजन अपारन में;
इन्द्र की बधूटिन के वृन्द दरसान लागे,
मोर सरसान लागे मोरनी पुकारन में;
दामिनि-छटा सों, घटा गाजन अछोर लागी,
राजनि हिलोर लागी सरिता की धारन में;
फूले वन, फूले मन आनँद भरन लागे,
झूले लागे परन कदम्बन की डारन में।

आई बरसात की रसीली सुखदाई ऋतु,
छिति पै चहूँघा सरसाति सुघराई है;
साजे बर-बसन-अभूषन सकल अंग,
झूलत हिँडोरे तरुनीन-समुदाई है
पैंग के भरत बिछुवान कीं मधुर धुनि,
सुनि-सुनि 'पूरन' यों उपमा सुनाई है;
हंसनु की अवली भुलाय कै पुरानी चाल,
आज ऋतु पावस को दै रही बधाई है।

कीधौं मारतंड की प्रचंडता-समन हेतु,
देवी धरनी ने बान सीतल पँवारे हैं;
कीधौं निज सम्पति को चोर सबिता को जानि,
करत वरुन ओर बाही के इसारे हैं;
कीधौं सियराइबे को 'पूरन' समीरन को,
प्रकृति कपूर-कन सघन उछारे हैं;
कीधौं घोर ग्रीषम में तापित मही-तल पै,
ही-तल जुड़ावन को सीतल फुहारे हैं?

चाँदनी चमेली चारु सावनी रसालन में,
बकुल-लवंगन-कदम्बन सगन में;
'पूरन' सरस ऋतु पावस के आवत ही,
भई है बहाली हरियाली बाग-बन में;
पादप वे रूरे जौ लौं आतप से झूरे रहे,
उन्नति निहारी भारी रावरे तनन के;
अरक-जवास! आप जग में उदास ऐसे,
झरसत कैसे बरसात के दिनन में!

पावस की पाय कै रसीली सुखदाई ऋतु,
भूलि दुख सगरे सँजोग-सुख पावत हैं ;
अंक में लगाय चंचला को घन भागसाली,
'पूरन' छिनै ही घन आनन्द मनावत हैं ;
हलके हृदयवारे कारे मुख लीन्हें वृथा,
हठ कै बियोगिन की बिथा को बढ़ावत हैं ;
बार-बार छनदा दिखाय गोहराय मोंहि,
धुरवा घमंडी हाय ! जियरा जरावत हैं।

जल-भरी झारी कारी बादरी बिराजै व्योम,
गरजन मन्द मन्त्र-मंगल उचारे हैं ;
छहरति दामिनि सो भाजन घुमावन में,
दमकत भूषन अमन्द दुतिवारे हैं।
परत फुहार जल पावन झरत सोही,
पेखि कवि 'पूरन' विचार उर धारे हैं ;
प्यारी सुकुमारी की बलाय बरकावन को,
देखौ देव-नारी आज आरती उतारे हैं।

चाल पै मराल-गन, कर पै मृनाल-कंज,
भृंग-जाल बारन पै, मन को लुभायो है ;
नैनन पै खंज-वृन्द, रीझो चन्द आनन पै,
तप को निधान सब ही के मन भायो है ;
एक पग ठाढ़े कोऊ, बूड़त, भ्रमत कोऊ,
भसम रमावै कोऊ फेरा देत धायो है ;
राधे हरि-प्यारी तेरे रूप के उपासकन,
जग को सरद में तपोवन बनायो है।

अरक-जवास ऐसे बिकसे कुसुद-कंज,
सेत घन व्योम धूरि धुन्ध ऐसी छै रही ;
ही-तल दहनहारी सीतल पावन आली,
जेठ की जलाक-सी तपन तन दै रही ;
चाँदनी अखंड लागै आतप प्रचंड ऐसी,
किरन सुधाकर की हलाहल वै रही,
बिन ब्रज-चन्द सुखकन्द मोहिं 'पूरन' जू.
भीषम सरद बरै ग्रीषम-सी ह्वै रही।

सरद-निसा में व्योम लखि के मयंक बिन,
'पूरन' हिए में इमि कारन बिचारे हैं,
बिरह-जराई अबलान को दहत चन्द,
ताते आज तापै बिधि कोपे दयावारे हैं ;
निसि-पति पातकी को तम की चटान-बीच,
पटकि-पछारि अंग निपट बिदारे हैं ;
ताते भयो चूर-चूर, उचटे अनन्त कन,
छिटिके सघन सो गगन मध्य तारे हैं।

सेत रंगवारे घन सोहत भसम अंग,
भाल बर-भूखन ससी की छटा छाई है,
देव-धुनि धार है अपार सोभा हंसन की,
कंज-बन गौरीजू की सोही सुघराई है ;
कासन को पुंज मंजु राजत बृषभराज,
भृंगन की अवली भुजंगन-सी भाई है ;
देखु सिव-भक्तन के हिये हुलसावन को,
सुखमा सरद की महेस बनि आई है।

चन्दमुखी भामिनि प्रकृति क्वार जामिनि में,
पूरन पुरुष संग मिलन सिधारी है;
सरस समीर स्वास सोहत सुवास मन्द,
चाँदनी चटक चारु रूप उजियारी है;
चिहुँक चकोरन की नूपुर बजत मंजु,
सेत घन-अंग अंगराग दुति प्यारी है;
तारागन वलित ललित चारु अम्बर की,
सारी स्याम बूटेदार सुन्दर सँवारी है।

औरै भाँति आज नीर-जमुना किलोलत है,
औरै भाँति डोलत समीर सुखदाई है;
औरै भाँति भायो है कदम्बन भ्रमर-भार,
धुरवान हू मुखान औरै धुनि छाई है;
स्याम के जनम-दिन भीर गोप-गोपिन की,
औरै भाँति नन्द-भौन जात भूरि धाई है;
औरै भाँति 'पूरन' रसाल गान छाजत है,
औरै साज संग आज बाजत बधाई है।

सौन्दर्य-शृंगार

नाइन बुलाय अंग-अंग उबटाय-न्हाय,
जावक दिवाय पग मेंहदी रचाई है,
कज्जल कलित करि लोचन अनोखे चोखे,
वन्दन की बिन्दी बाल-भाल पै लगाई है;
चारु मखतूल-ताग रुचि सों गुँधाय वेनी,
सुघर अनूप माँग मोतिन भराई है;
तारन की बाँधि कै कतार नीके तारापति,
मानहु नवीन कीन्हीं तम पै चढ़ाई है॥

उत बाहन हैं इत नैन मृगा, उत चाँदनी ह्याँ तन तेज अनी,
उत कोस सुधा को सराहौं इतै, बतरान है मंजु पियूष सनी;
उत 'पूरन' षोडस पेखी कला, इत सोरा सिंगार की सोभ बनी;
बृषभानु की नन्दिनी नागरि की, अरु चन्द की होड़ ठनी सो ठनी।

इत मोर-पखा उत मोर नचैं, सुर-चाप उतै इत है कछनी,
बक-पाँति उतै इत मोती-हरा, उत गाजन ह्याँ धुनि बेनु बनी;
चपला है उतै इत पीतपटी, तन ह्याँ उत स्याम-घटा है घनी,
रस 'पूरन' या ऋतु में सजनी, हरि-पावस होड़ ठनी-सो-ठनी।

गज-बल-धाम जे सघन घनस्याम छाए,
हय बल धावत प्रचंड जो बयारी है;
तुंग तरु रथ हैं, बलाक-दल पैदल हैं,
घोर धुनि दुन्दुभी बजत जोर न्यारी है;
बूँद की कटारी सुर-चाप असि चंचला है,
करखा पपीहा-पिक-मोर-सोर भारी है;
मान, गढ़ तोरिबे को आली मिस पावस के,
मैन नृप सैन चतुरंगिनी सँवारी है।

मन खैंचत तार के खैंचत ही, उमहै जब "जोड़" बजावन में;
उमगैं मधुरे सुर की लहरी, गहरी "गमकैं" दरसावन में।
चपलाई हरै थिरता चित की, अँगुरी "मिजराब" चलावन में;
मनभावन गावन के मिस बाल, प्रबीन है चित्त चुरावन में।

उर प्रेम की जोति जगाय रही, मति को बिनु यास घुमाय रही;
रस की बरसात लगाय रही, हिय पाहन से पिघलाय रही;
हरियारे बनाय के रूखे हिये, उतसाह की पैंगै झुलाय रही;
इक राग अलापि कै भाव-भरो, खटराग-प्रभाव दिखाय रही।

ब्रह्म-विज्ञान

जाही दिन-राज के प्रकास में लख्यौ है सब,
ताही को लख्यो न अचरज यों महान है;
बोलत-बतात दिन-रात तौ हूँ पूँछत हौ?
सचमुच मुख में हमारे का जुबान है;
खोजन हौं जाको घर-बाहर, अखंड सो तो,
आतमौ तिहारे घर ही में राजमान है;
सच्चित स्वरूपवारो 'पूरन' परम प्यारो,
सोई है जहान माहिं, ताहि में जहान है।

चाँदनी को धाम जान्यो, सूधो ताहि नाम जान्यो,
जान्यो दुःख-धाम, जौन सुख को निधान है;
जूड़े को तपायो मान्यो,सुखी को सतायो जान्यो,
अपनो परायो मान्यो, है रह्यो अजान है;
लै कर सहारो सतसंग स्रुति-सीखवारो,
ब्रह्म रूपी रस्सी को न लीन्यो पहचान है;
ताहि ते हगन तेरे भय को करनहारो,
बगरो भुजंग ऐसो सगरो जहान है।

सुख-दुख-भोगी कैसे आतमा प्रतीत होत,
जदपि न काहू भाँति व्यापै ताहि माया है;
जैसे जल-भाजन में नभ-प्रतिबिम्ब, तहाँ
जीव-प्रतिबिम्ब नभ आतमा अमाया है;
बासना-पवन जल-बुद्धि को डुलावै देखो,
भेद खुल जावे जु पै संकर की दाया है;
'पूरन' वा नभ में न किंचित बिकार होत,
जदपि दिखाई देत डावाँडोल काया है।

प्रीति मणि-माल की, न भीति है भुजंगम की,
सत्रु पर क्रोध है, न मित्र पर दाया है;
मित्रता सुधा सों है, न बैर है हलाहल सों,
पदवी प्रजा की तैसो भूपति को पाया है;
कानन में बास तैसे, कलित मकानन में;
अम्बर-बलित सो दिगम्बर की काया है;
'पूरन' अनन्द माहिं लीन-ग्यान योगिन को,
गरमी की धूप तैसी सरदी की छाया है।

कोऊ पाट ही के नीके अम्बर जरी के सजे,
कोऊ दुख-मगन नगन दीन-काया है;
कोऊ स्वाद-पूरे खात व्यंजन सुधा-सों रूरे,
काहू पै विधाता की न साग हू की दाया है;
कहूँ सोक छायो, कहूँ आनँद को पायो रंग,
कोऊ अति छुद्र, कोऊ आसमान-पाया है;
'पूरन' विचित्र हैं चरित्र भूमि-मंडल के,
रामजी की माया कहूँ धूप कहूँ छाया है।

कंचन को कंकन ज्यों पृथक न कंचन सों,
तैसे दयावान सों न भिन्न होत दाया है;
पवन को बेग जैसे भिन्न है पवन सों न,
जैसे पंचभूतन सों बिलग न काया है;
याही भाँति 'पूरन' जू जद्यपि कहत लोग,
व्यापक जगत माँहिं ब्रह्म संग माया है;
सार को बिचारै, माया ब्रह्म सों बिलग नाहीं,
होत ज्यों पुरुष सों बिलग नाहिं छाया है।

वानी वेद जंगम अनन्त जो बखानी नितै,
हितै लिखी ब्रह्म महात्म्म को प्रकास है ;
उत्तर औ दक्खिन औ पूरब औ पच्छिम हूँ,
ऊपर औ नीचे छोर नाहीं कहुँ भास है ;
सर्व सक्तिमान करुना की भगवान ईस,
महिमा बखानन को कौन सों सुपास है ;
'पूरन' मयंक-रवि-तारे अंक आखर हैं,
रावरो विरद-पत्र वापुरो अकास है।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' के ग्रन्थ

काव्य—पूर्ण-संग्रह (पूर्ण की समस्त रचनाओं का),
नाटक—चन्द्र-कला-भानु-कुमार ।

पंडित सत्यनारायण 'कवि-रत्न'

'व्रजकोकिल' सत्यनारायण 'कविरत्न' की असामयिक मृत्यु पर हिन्दी-भाषा-भाषी संसार एक बार क्षुब्ध हो उठा था। जन्म के क्षण से लेकर मरण पर्यन्त हमारे इस प्रतिभाशाली कवि-रत्न का जीवन करुणाजनक ही बना रहा। यही कारण है कि आज भी इनकी स्मृति हमारी आँखों में आँसू ला देती है।

सत्यनारायण जी का जन्म अलीगढ़ जिले के सराँय नामक गाँव में संवत् १९४१ में हुआ। बाबा रघुवरदासजी ने इन्हें हिन्दी की प्रारम्भिक शिक्षा दी और धाँधूपुर चले जाने के पश्चात् आगरे में इन्हें अँगरेज़ी की शिक्षा मिली। इन्हें कई वर्षों तक व्रज-भूमि में निवास करने का सुपास मिला इसलिए ये व्रजचन्द्र श्रीकृष्ण के अनन्य प्रेमी हो गये। उनके प्रति अपनी भक्ति भी इन्होंने व्रज की व्रजभाषा में ही व्यक्त की है। इन की भाषा में ठेठ असाहित्यिक व्रज-बोली के रूप भी मिलते हैं जो अन्य प्रान्त वालों के लिए दुर्बोध से पड़ते हैं।

'कविरत्न' जी के कविता-पाठ का ढंग अत्यन्त सरस और मर्मस्पर्शी था। अपनी मनोमोहक पठन-शैली के द्वारा इन्होंने स्वामी रामतीर्थ और कवीन्द्र रवीन्द्र को भी मुग्ध कर दिया था। इनकी कविता में करुणा की पुट प्रायः ऐसी अच्छी रहती थी कि श्रोताओं पर उसका प्रभाव बिना पड़े न रहता था। पारिवारिक ज़ीवन की परिस्थितियों ने इनकी कविता को एक विशेष दिशा में मोड़ दिया था जिसमें दुख, अशान्ति और निराशा की छाप बहुत गहरी पड़ी हुई है।

सत्यनारायण जी ने संस्कृत के कविवर भवभूति के दो नाटकों 'उत्तर रामचरित' और 'मालती माधव' के सुन्दर अनुवाद किये। इनके अतिरिक्त इन्होंने अँगरेज़ी के भी एक ग्रन्थ का 'देशभक्त होरेशस' के नाम से अनुवाद किया। इनकी स्फुट मौलिक कविताओं का संग्रह 'हृदय-तरंग' के नाम से छपा है। इसी में इनका 'भ्रमर-दूत' नामक काव्य भी है।

सरसता, सहृदयता और अकृत्रिमता के लिए 'कविरत्न' जी का स्मरण इधर के व्रज-भाषा-साहित्य में विशेष होता है। इनके स्वभाव की सरल ग्रामीणता को लेकर जो अनेक घटनाएँ साहित्यिक-समारोह के अवसरों पर घटित हुईं, वे इन्हें हमारे हृदय के और भी निकट ला देती हैं। इनकी भाषा मंजु, मृदुल और प्रसाद गुणमयी है। माधुर्य तो व्रज-भाषा की अपनी वस्तु है ही। इन्होंने व्रज-भाषा-काव्य में समयोचित नव भावों का भी अच्छा समावेश किया है।

आपका देहावसान संवत् १६७५ में हुआ।

मातृ-भू-बन्दना

जयति जयति जननी—

अमल-कमल-दल-बासिनि, वैभव-बिपुल-बिलासिनि,
नित नव-कला-निकासिनि, मुद मंगल-करनी;
भुवन-बिदित गुन-रासिनि, सु-मधुर मंजुल भासिनि,
निज जन हृदयोल्लासिनि, स्रुति पुरान-बरनी;
दारिद-दुख-दल नासिनि, उर उत्साह-प्रकासिनि,
सान्ति सतत अभिलासिनि, त्रिभुवन-मन-हरनी।

उपालम्भ

मोहन अजहुँ दया हिय लावौ ;
मौन-मुहर कबलौं टूटैगी, हरे ! न और सतावौ ।
खबर बसन्तहु की कछु तुमकों, बिरद-बानि बिसराई,
ऐसी फूल रही सरसों सी, तव नयनन में छाई ;

अचल भये सब अचल, देखिये, सरि से अस्रु बहावैं,
सूरज पियरे परे, मोह-बस, चिन्तित दौरे जावैं ;
द्रुम तक हू के दृग नव-किसिलय, रोइ भये अरुनारे,
दारुन देस-दसा लखि बौरे, ये रसाल चहुँ सारे ;

अबला-लता-कलेवर कोमल, कम्पित भय दरसावें,
लम्बी लेत उसाँस जानिये, जबै हृदय लहरावै ;
कारी कोयल कूक कलाकल, जदपि गुहार मचावत,
चहुँ अरन्य-रोदन सम सुनियत, कछु न प्रभाव जनावत ;

लखियत ना सद्भाव कमल अब, कुसुमित मानस माँहीं,
कोरी प्रकृति-छटा बस सुन्दर, तथा रही कछु नाहीं ;
जन्म-भूमि निज ! अरे साँवरे ! याकौ हित अभिलाखौ,
अर्ध दग्ध जड़ दसा बीच अब, अधिक न याकों राखौ ।

वसन्त-स्वागत

मृदु मंजु रसाल मनोहर मंजरी, मोर पखा सिर पै लहरैं,
अलबेली नबेलिन बेलिन में, नवजीवन-जोति छटा छहरैं ;
पिक-भृंग-सुगुंज सोई मुरली, सरसों सुभ पीत पटा फहरैं,
रसवन्त बिनोद अनन्त भरे, ब्रज-राज बसन्त हिये बिहरैं ।

जय बसन्त ! रसवन्त सकल सुख - सदन सुहावन,
मुनि-मन-मोहन भुवन तीन-जिय प्रेम गुहावन !
जय सुन्दर स्वच्छन्द-भावमय ! हिय प्रति परसन,
जय नन्दन वन सुरभित-सुखद-समीरन सरसन !

जय मधुमाते मधुप-भीर को चहुँ दिसि छोरन !
ललित लतान बितानन में दुति-दलहिं-विथोरन !
जय अनूप आनन्द अमित अति अटल प्रदरसन,
जय रस-रंग-तरंग, वेलि अलवेलिन बरसन !

करिबे स्वागत आप हरन त्रयताप सकल थल,
जड़-जंगम जग-जीव जनौ जाग्यौ जीवन-जल;
जो तरु बिथित-वियोग सदा दरसन तव चाहत,
नोंचि नोंचि कच-पातनि अस्त्रु-प्रवाह प्रवाहत;

देखहु किसलय नहीं आँखि अति अरुण भई तिन,
रोवत रोवत हाय थके ! अब टेर सुनौ किन ?
तुम्हरी दिसिहिं निहारि पुलकि तन-पात डुलावत,
कर सों मानहुँ मिलन तुमहिं निज ओर बुलावत;

बौरे नहीं रसाल वने बौरे तव कारन,
बलिहारी तव नेह नियम निठुराई धारन !
तुम सों कठिन कठोर और जग दूसर दीख न,
साँचो किय निज नाम "पंचसर को सर तीखन !"

तौहू मृदुल स्वभाव धारि जो प्रेमिन भावत,
करनौ वाकी ओर जाहि सो प्रेम लगावत;
लखि तुम्हरे पद-कंज रंज सब भूलि भूलि तन,
साजि-साजि सँग ललित लहलही लौनी लतिकन;

भाँति-भाँति के बिटप-पटनि सजिबे ही आवत,
कोऊ फल कोऊ फूल मुदित मन भेटहिं लावत।
"जयति !" परसपर कहत पसारत आपनि डारन,
मनहुँ मत्त मन मिलन मित्र कर करगर डारन;

'आवहु ! आवहु ! वेगि अहो ! ऋतुगन के नरपति !
तरु-वृन्दनि को लखहु आप सोभा की सम्पति।'
वह देखौ नव कली भली निज मुखहिं निकारति,
लगि-लगि बात-प्रभात गात अरसात सँभारति;

प्रथम समागम-समर जीति मुख मुदित दिखावति,
लहकि-लहकि जनु स्वाद लेन को भाव बतावति;
मुखहिं मोरि जमुहाति भरी तन अतन-उमंगन,
जोम-जुवानी जगे चहत रस - रंग - तरंगन !

वह देखौ अलि-कंज कली कल-कुंज गुँजारत !
मानहुँ मोहन मनहिं मदन को मन्त्र उचारत।
ठौर-ठौर मधु-अन्ध भयौ, वह देखौ झूमत !
कबहूँ जापर, वापर, यों सब ही पर घूमत।

सुन्यौ प्रथम रस-रास रच्यौ श्रीपति-सम कानन,
गूँज्यो वृन्दा-विपिन मुरलिधर मुरली - तानन,
कटि पीताम्बर मटकनि गति जन-मनहिं चुरावन,
चुम्बन करि भरि अंग वियोगिन-जीय जुरावन,

रच्यौ रास यहि भाँति नृत्य कर संग छबीलिनि,
परम प्रेम-परिपूर्ण अंग रस-रंग-रंगीलिनि,
वह देख्यौ हम आज रास-रस रहस-रंग मनु,
मकर [illegible] अति निपट प्रकृति की जो निरंग तनु।

उत तो प्यारौ कृष्ण, कृष्ण इत अली बिराजत;
पीत पटी उत कसी, पीत इत रेख सुभ्राजत;
गोपिकानि के संग ब्रितै बनवारी आवन,
बनवारी नव कली संग इत षटपद धावन,

उत ब्रज-बाला मुग्ध-करनि मुरली-ध्वनि सोहति,
इतहु नेह-नद द्रवत अली-गुंजार बिमोहति।
चित सों चुम्बन करत अंग पर कलिका भेंटत,
करि बियोग में योग दुसह दुख-दाहनि मेटत।

उत बनमाली रसहिं लेत गहि गोपिनि कुंजनि,
वनमाली अलि इतहु छकत रस कलिका-पुंजनि;
झपटि लिपटि उत गोपिनि-मुख राजत स्रम-सीकर,
ओस-बिन्दु इत कसी पाँखुरी रलत वसीकर।

अधर अधर रस पियौ स्याम उत लै गोपिन कहँ;
पीवत मधुप पराग इतै प्रस्फुटित कलिन महँ;
जय पद पद पर परम प्राकृतिक प्रेमहिं पीवन,
जोबन-ज्योति जगावन जय जीवन जग-जीवन!

फूलत कच - कचनार अमार अनार हजारन,
किंसुक-जाल तमाल बिसाल रसाल पसारन;
वह देख्यौ कुल-बकुल घिर्यौ जो आकुल मधुपन,
चारत चहुँधा चित्त निचोरत चारु मधुरपन;

कहूँ पलट के पुहुप चटकि चटकत चित चायन;
बौरे आनँद मनहुँ प्रेम घोरे मन भायन!
जगत-जननि कौ महा अमंगल-मूल लजावन,
मानहुँ सब जग-बन्दन बन्दत-बार लजावन;

मुकुलित अम्ब-कदम्ब-कदम्बनि पै कल कूजत,
"केहू! केहू!" मोर अलापत आसा पूजत;
अवरेखहु निज स्वच्छ छटा जमुना-जल-फूलन,
सटकि कुंज-बन-सघन घटा नव फूले फूलन;

द्रुम-डारनि के बीच चपल-चहचही चुहूकनि,
कोकिल-कीर-कपोत-कलित कल कंठ कुहूकनि;
मानहुँ करि स्तुति-पाठ धरम की ध्वजा उड़ावत,
"हे भारत अब उठौ तजौ आलस" समझावत,

ये सुबोल द्विज अपर डहडही डारन बोलत,
करसायल-मन-हरनि हरनि-सँग इत-उत डोलत;
दुबरी गहि मुख तृनहिं सुरभि चहुँ दिसि जहँ जोवति,
श्री गोविन्द-गोपाल-कृष्ण-सुधि करि जनु रोवति;

बछरा अलप अजान ब्यार भरि थरकत, फरकत,
लभरत, झिझकत, बिझकत, फुदकत, कुदकत, बचकत!
देखहु जमुना-पुलिन सुभग सोभित रेती-छवि,
चिलकति, झलकति मनहुँ कान्ति प्रगटी खेती फबि!

किम्बा परम पवित्र रची बेदी मन-भावनि,
तीन लोक-छबि सची मनहुँ आनन्द दृढ़ावनि,
ललकि हिलोरैं खाति कलिन्दी रस सरसावति,
नीलाम्बर तनु धारि कृष्ण मिलिबे जनु धावति!

भरे सरोवर स्वच्छ नील जल नलिन रहे खिलि,
सारस-हंस-चकोर घोर सब सोर करैं मिलि।
जुही गन्धि सों पुही चुई परिमल सुचि धावति,
पुहुप-धूप-धुसरित हीय सब सूल नसावति,

हरी घास सों घिरे तुंग टीले नभ-चुम्बत !
तिन में सीधी सरल सरग दिसि उरग उलम्बत,
जव सों वहरैं लहरैं छहरैं तेरी समुदित,
विन कारन नहिं ज्ञात आप आपहिं सों प्रमुदित ;

कोऊ सरसों-सुमन फूल जौ सिर सौं बाँधत,
गरियारिन गोरिन के सँग कोउ चुहल मचावत,
बरस दिना की आस पुजावन, कसक मिटावन,
नाचि सजाय-बजाय लगे गावन में गावन,

कहुँ गँवार गम्भीर वसन्ती बसन रँगावत,
जो तव स्वच्छ स्वरूप सदा सब के मन भावत ;
ऊधम उमग्यो परत रँग्यो जग तव रस-रागत,
गारी-पिचकारी-तारिन सों तेरो स्वागत !

कोउ बावरे भये गुलालहिं मगन उड़ावत,
करि फगुवारन लाल गीत फागुन के गावत ;
हुरिहारिन की धूम और रंगरेलनि-पेलनि,
देखहु तिनकी अहा ! खेल-खेलनि झकझेलनि ;
मोद-उदधि की लहरि सबन उनमत्त बनावति,
तारि लाज-कुल-दृढ़ पुल कों जनु उमगति आवति;
सीत और भय-भीत कबहुँ परबसहिं नचावत;
ग्रीषम के गहि केस स्वेद उर में छलकावत,

सीतल-मन्द सुगन्धि-सनी निज वायु बहावत,
याही सों तू साँचमाँच 'ऋतुराज' कहावत !
भारत आरत ताकी कटक करेजा-करकत,
पहुँच्यो दसा बसन्त कहां सों ररकत-ररकत !

ऋतु-सुमौलि-मनि अहो ! यहाँ के हरहु त्रितापन,
प्रेमवन्त ! गुनवन्त ! करहु सुख-सान्ति सुथापन !
हमहूँ एक गंवार गाम-रस-पुलकित तन-मन,
जासों हमरो कह्यो सुन्यो छ्मियो सब भगवन,

महिमा अपरमपार पार को पावत पूरन,
सत्य वर्ननातीत गीत तव करत सुपूरन।

पावस-प्रमोद

जय जग-जीवन जलद नवल-कुलहा-उलहावन,
विस्व-बाटिका अमल बिमल बन बारि बहावन;
जीवन दै बन बनसपती में जीवन लावन,
गरु ग्रीषम पन-दरप दलन, मन मोद मनावन;

जय मन-भावन, बिपत-नसावन, सुर-सरसावन,
सावन को जग ठेलि केलि जल चहुँ बरसावन !
जय घनस्याम ललाम प्रेम-रस उरहि दढ़ावन,
फूल भरी बसुधा सिर सारी हरी उढ़ावन ?

बाँधि मंडलाकार पुरन्दर को धनु पावन,
तरजि दिखावन गरजि, लरजि मन भय उपजावन,
अद्भुत आभावन्त अंग अति अमल अखंडत,
घुमड़-घुमड़ घन घनो घूम घिरि घोर घमंडत;

कारे कजरारे मतवारे धुरवा धावत,
सुख सरसावत, हिय हरसावत, जल बरसावत;
उछरि-उछरि जल-छाल छिरकि छिति छर-रर छमकति,
चंचल चपला चमचमाति चहुँधा चलि चमकति,

मनु यह पटिया परी माँग इंगुर की राजति,
छाँह तमालन स्याम संग स्यामा जनु भ्राजति;
घर कोठनि की तरकनि, दरकनि, माँटी सरकनि,
देखहु तिनकी अरर-अरर ऊपर सों ररकनि।

सुखद सुरीलो गामन में ललना-गन-गामन,
भरि उछाह घर सों तिन आमन भूलन जामन;
पवन उड़त उर के पटुकनि भटपटहिं सम्हारन,
मंजुल लोल कलोलनि बोलन विविध मल्हारन;

एक-एक कों पकरि बुलावन, कर गहि लावन,
जोरावरी चलावन, भूला भमकि भुलावन;
मधुर मिसमिसी सों मचकी दै जाहि हिलावन,
"राखो! मेरी सोंह! मरी!" कहि ताहि रखावन;

ग्रीषम गयो पराइ, सकल थल सोहत सीतल,
देत लैन नहिं चैन रैन तउ मसक-दंस-दल।
बरन-बरन के बादर सों कहुँ परति फ़्वार अति,
भीनी-भीनी गन्ध गहति, बर बहति पवन-गति;

देखहु मनहिं प्रसन्न ललित मृग-छौननि-आनन,
डोलनि तिनकी कानन, करि ऊपर कों कानन;
रज-बिहीन पतरी लतिकन कों देखहु लहकन,
घूँघट-पट सों मुख निकारि चाहत जनु चहकन;

झरत द्रुमन सों सुमन सौरभित डारनि हलि-हलि,
मनहु देत बन-थली तोहि स्वागत-पुष्पांजलि !
निरखि चहूँ छबि-पुंज लगत जनु यह मन-भावन,
कुंज-बिहारी कुंजन सों कढ़ि चाहत आवन।

परम नीक रमनीक सुखद नित नव-मंगल-प्रद,
अमित अमल प्राकृतिक छटा सों प्रमुदित गद्‌गद;
सजल सफल, अति सरल, सकल सुर-नर-मुनि मोहति,
कलित ललित तृन हरित संकुलित वसुधा सोहति :

खेचर, भूचर, जलचर, तृन-तरु-सब के गातन,
उठति अमन्द तरंग, हृदय आनन्द समात न;
गान तान रस-सान, जान जिय जनु जग जाचन,
प्रकृति-कामनी तन उघारि चाहति जनु नाचन;

तेरी सुन्दरताई भाई जो सब के मन,
मुख सों बरनि न जाई छाई सोभा नैनन।
जद्यपि कवियन गाई पाई ताकी थाह न,
मन ही-मनहिं समाई आई नहिं अवगाहन;

रह्यो अछूतो गुनि-गनहूँ सों जब तव गुन-घन,
कहा हमारे बूते, देखहुँ जासों गुनि मन;
तउ तव सोभा-सुखद बिसद-सुठि पद-मय दरपन,
करत सत्यनारायण जन तुम्हरे ही अरपन।

भ्रमर-दूत

श्री राधा वर निज-जन-बाधा-सकल-नसावन,
जाको ब्रज मनभावन जो ब्रज को मनभावन ;
रसिक-सिरोमनि मन-हरन, निरमल-नेह-निकुंज,
मोद-भरन, उर-सुख-करन, अविचल आनँद-पुंज।
रंगीलो साँवरो ;

कंस मारि भू-भार-उतारन, खल-दल-तारन,
बिस्तारन बिज्ञान बिमल, श्रुति-सेतु-सँवारन ;
जन-मन-रंजन, सोहना, गुन-आगर चित-चोर,
भव-भय-भंजन, मोहना, नागर नन्द-किसोर,
गयो जब द्वारिका ;

बिलखाती, ससनेह पुकारति जसुमति माई,
स्याम-बिरह-अकुलाती, पाती कबहुँ न पाई,
जिय प्रिय हरि-दरसन बिना, छिन-छिन परम अधीर,
सोचति, मोचति निसि-दिना, निसरत नैननु नीर।
बिकल कल ना हिये।

पावन सावन मास नई उनई घन पाँती,
मुनि-मन-भाई, छई, रसमई मंजुल काँती,
सोहत सुन्दर चहुँ सजल, सरिता-पोखर-ताल,
लोल-लोल तहँ अति अमल, दादुर बोल रसाल,
छटा चहुँ परै।

अलबेली कहुँ बेलि, द्रुमन सों लिपटि सुहाई,
धोये-धोये पातन की अनुपम कमनाई,
चातक चलि, कोयल ललित, बोलत मधुरे बोल,
कूकि-कूकि केकी कलित, कुंजन करत कलोल.
निरखि घन की छटा।

इन्द्र-धनुष औ इन्द्र-बधूटिन की सुचि सोभा,
को जग जनम्यो मनुज, जासु मन निरखि न लोभा,
प्रिय पालन पावस लहरि, लहलहात चहुँ ओर,
छाई छबि छिति पै छहरि ताको ओर न छोर,
लसै मन-मोहनी।

कहूँ बालिका-पुंज कुंज लखि परिमत पावन,
सुख-सरसावन, सरल-सुहावन, हिय-हरसावन,
कोकिल-कंठ-लजावनी, मनभावनी अपार,
भ्रातृ-प्रेम-सरसावनी, रागत मंजु मलार,
हिंडोरनि झूलतीं।

बाल-वृन्द सरसत उर-दरसत चहुँ चलि आवै,
मधुर-मधुर मुसकाइ रहस-बतियाँ बतरावै,
तरु-वर डार हलावहीं, धौरी, धूमरि टेरि,
सुन्दर राग अलापहीं, भौंरा, चकई फेरि,
बिबिध क्रीड़ा करैं।

लखि यह सुखमा-जाल, लाल-निज-बिन नँदरानी,
हरि-सुधि उमड़ी-घुमड़ी तन, उर अति अकुलानी;
सुधि-बुधि तजि. माथौ पकरि, करि-करि सोच अपार,
दृग-जल मिस मानहुँ निकरि, बहीं बिरह की धार;
कृष्ण-रटना लगी।

कृष्ण-बिरह की बेलि नई ता उर हरियाई,
सोचन अश्रु-बिमोचन दोउ दल बल अधिकाई,
पाइ प्रेम-रस बढ़ि गई, तन-तरु लिपटी धाइ,
फैलि, फूटि, चहुँधा छई, बिथा न बरनी जाइ;
अकथ ताकी कथा।

कहति बिकल मन महरि, 'कहाँ हरि ढूढ़न जाऊँ ?'
'कब गहि लालन ललकत-मन, गहि हृदय लगाऊँ ?'
'सीरी कब छाती करौं, कब सुत दरसन पाउँ ?'
'कबै मोद निज मन भरौं, किहि कर धाइ पठाउँ,
सँदेसो स्याम पै ?'

'पढ़ी न आखर एक, ज्ञान सपने ना पायो,
दूध-दही चारन में सबरो जनम गँवायो;
मात-पिता बैरी भये, शिक्षा दई न मोहि,
सबरे दिन यों ही गये, कहा कहें ते होहिं।'
मनहिं मन में कही।

'सुनी गरग सों अनुसूया की प्रथम कहानी,
सीता सती पुनीता की सुठि कथा पुरानी;
बिसद ब्रह्म बिद्या-पगी, मैत्रेयी तिय-रत्न,
सास्त्र-पारगी गारगी, मन्दालसा सयत्न,
पढ़ीं सब की सबै।'

'निज-निज जनम धरन को फल उनने ही पायो,
अबिचल, अभिमत सकल भाँति सुन्दर अपनायो;
उदाहरनि उज्जल दयो, जग की तियनि अनूप,
पावन जस दस-दिसि छयो, उनको सुकृति-सरूप;
पाइ बिद्या-बलै।'

'नारी-सिच्छा निरादरत जे लोग अनारी,
ते स्वदेस-अवनति-प्रचंड-पातक-अधिकारी;
निरखि हाल मेरो प्रथम, लेउ समझि सब कोइ,
बिद्या-बल लहि मति परम, अबला सबला होइ।
लखौ अजमाइ कै।'

'कौनैं भेजौं दूत, पूत सों बिथा सुनावै,
बातन में बहलाइ, जाइ ताकों इहँ लावै?
त्यागि मधुपुरी सों गयो, छाँड़ि सबन को साथ,
सात समुन्दर पै भयो, दूर द्वारिका-नाथ;
जाइगौ को उहाँ ?'

'नास जाइ अक्रूर क्रूर तेरो बजमारे!
बातन में दै सबनि लै गयो प्रान हमारे,
क्यों न दिखावत लाइ कोउ, सूरति ललित ललाम,
कहँ मूरति कमनीय दोउ, स्याम और बलराम।
रही अकुलाइ मैं।'

अति उदास, बिन आस, सबै-तन-सुरति भुलानी,
पूत-प्रेम सों भरी, परम दरसन ललचानी,
बिलपति, कलपति अति जबै, लखि जननी निज स्याम,
भगत-भगत आये तबै, भाये मन अभिराम,
भ्रमर के रूप में।

ठिठक्यो, अटक्यो भ्रमर देखि जसुमति महरानी,
निज-दुख सों अति दुखी, ताहि मन में अनुमानी;
तिहि दिसि चितवत चकित चित, सजल जुगल भरि नैन,
हरि-वियोग कातर अमित, आरत गद-गद बैन,
कहन तासों लगी।

'तेरो तन घनस्याम स्याम, घनस्याम उतैं सुनि,
तेरी गुंजन सुरलि मधुप, उत मुरलि मधुर धुनि,
पीत रेख तव कटि बसति, उत पीताम्बर चारू,
बिपिन-बिहारी दोउ लसत, एक रूप सिंगारू,
जुगल रस के चखा'

'याही कारन निज प्यारे ढिँग तोहिं पठाऊँ,
कहियो वासों बिथा, सबै जो अबै सुनाऊँ;
'जैयो षटपद धाय कै, करि निज कृपा विसेस,
लैयो काज बनाय कै, दै मो यह सन्देस;
सिदोसौ लौटियौ।'

'जननी-जनम-भूमि सुनियत सुर्गहु सों प्यारी',
सो तजि सबरो मोह सांवरे तुमनि बिसारी;
का तुम्हरी मति गति भई, जो ऐसौ बरताव,
किधौं नीति बदली नई, ताकौ पर्यौ प्रभाव;
कुटिल विष को भर्यो ?'

'माखन कर पौंछन सों चिक्कन चारू सुहावत,
बिधु बन स्याम तमाल रह्यो जो हिय हरसावत,
लागत ताके लखन सों, मति चलि वाकी ओर,
बात लगावत सखन सों, आवत नन्द-किसोर,
कितहुँ सों भाजिकें।'

'वही कलिन्दी-कूल, कदम्बन के बन छाये,
बरन-बरन के लता-भवन मन-हरन सुहाये;
वही कुन्द की कुंज ये, परम-प्रमोद-समाज,
पै मुकुन्द-बिन बिस-भये, सारे सुखमा-साज !
चित्त वाही धर्यो !'

'लगत पलास उदास, असोक ससोकहु भारी,
बौरे बने रसाल, माधवी लता दुखारी,
तजि-तजि निज प्रफुलितपनौ, बिरह-बिथित अकुलात।
जड़ हू ह्वै चेतन मनौं, दीन-मलीन लखात,
एक माधौ-बिना!'

'नित नूतन तृन डारि सघन बंसी-वट-छैयाँ,
फेरि-फेरि कर-कमल चराईं जो हरि गैयाँ,
ते तित सुधि अति ही करत, सब तन रहीं झुराय,
नयन स्रवत जल, नहिं चरत, ब्याकुल उदर अघाय,
उठाये म्हौं फिरैं!'

'वचन-हीन ये दीन गाऊ दुख सों दिन बितवतिं,
दरस-लालसा लगी चकित-चित इत-उत चितवतिं,
एक संग तिनकों तजत, अलि कहियो, ऐ लाल!
क्यों न हीय निज तुम लजत, जग कहाय गोपाल!
मोह ऐसो तज्यो!'

'नील-कमल-दल-स्याम जासु तन सुन्दर सोहै,
नीलाम्बर बसनाभिराम बिद्युत-मन मोहै,
भ्रम में परि घनस्याम के, लखि घनस्याम अगार,
नाचि-नाचि व्रज-धाम के, कूकत मोर अपार;
भरे आनन्द में!'

'यहँ को नव नवनीत मिल्यो पसरी अति उत्तम,
भला सकै मिलि कहा सहर में सद या के सम?
रहै यही लालो अजहुँ, काढ़त यहि जब भोर,
भूखो रहत न होइ कहुँ, मेरो माखन-चोर!
बँध्यो निज टेव को!'

सत्यनारायण जी के ग्रन्थ

अनुवाद—उत्तर रामचरित, मालतीमाधव; देशभक्त होरेशस (अँगरेज़ी से)।

मुक्तक संग्रह—हृदय-तरंग।

श्री वियोगीहरि

ब्रज-वल्लभ और ब्रजभाषा के प्रकाम प्रेमी वियोगी हरि जी ने आजकल साहित्य से संन्यास ले लिया है। भावुक-हृदय तो आप हैं ही, अतः आजकल दिल्ली में रह कर तन-मन-धन से अछूतों की सेवा कर रहे हैं। 'हरिजन-सेवक' नाम का एक हिन्दी-पत्र भी आपके सम्पादन में निकलता रहा है।

वियोगी हरि में अच्छी कवि-प्रतिभा है। आपका हृदय स्वच्छ, विशाल और सरस है जो उसके अनुरूप ही है। 'प्रेम-शतक', 'प्रेम-पथिक', और 'प्रेमांजलि' में आपकी ब्रजभाषा की उत्कृष्ट और हृदय-स्पर्शिनी कविताएँ मिलती हैं। 'भावना', 'अन्तर्नाद' आपकी गद्य-काव्य की अच्छी पुस्तकें हैं। गद्य-काव्य के क्षेत्र में वियोगीहरि ने उस समय कार्य किया जिस समय उस क्षेत्र में प्रचुर संख्या में कवि न थे।

वियोगी हरि की प्रख्यात रचना 'वीर-सतसई' है। दोहा-शैली में यह वीर रस का सराहनीय काव्य है। कुछ दोहे तो वस्तुतः बड़े ही सुन्दर और सुगठित हैं। इस पुस्तक पर कवि को 'सम्मेलन' ने १२००) का 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' देकर सम्मानित किया है।

हरिजन-आन्दोलन में आने के पश्चात् वियोगीहरि जी की राष्ट्रीय-भावना को भी उत्तेजना मिली और उसी आवेश में आपने 'चरखे की गूँज', 'चरखा-स्तोत्र' और 'असहयोग-वीणा' नाम की साधारण पुस्तकें लिखीं। वीर-सतसई में यों तो विचार अच्छे हैं; किन्तु भावों की नवीनता और काव्य-कला प्रवीरता नहीं—यहाँ तक कि भीम के द्वारा दुःशासन के रुधिर-पान तक की प्रशंसा है। पद्यमय ग्रन्थों के सामने आपके कुछ गद्य ग्रन्थों में विशेष साहित्यिक-सौष्ठव है।

सत्य-वीर

सुन्दर सत्य-सरोज सुचि, बिगस्यौ धर्म-तड़ाग;
सुरभित चहुँ हरिचन्द कौ, जुग-जुग पुन्य-पराग।
फुँकन देत नहिं मृत सुवनु, माँगत हिय-तनु-पीर;
निरखि नृपति-सत-धर्म-धृति, धृति हूँ भई अधीर।
पद्मा-पति पट पीत क्यों, खस्यौ नीर-निधि-तीर ?
पतिहिं फारि शैव्या दियौ, निज-अँग-आधो चीर।
जौ न जन्म हरिचन्द कौ, होतो या जग माँह,
जुग-जुग रहति असत्य की, अमिट अँधेरी छाँह।
नहिं बिचल्यौ सत-पन्थ तें, सहि असत्य दुख-द्वन्द,
कलि में साँचौ रूप ह्वै, पुनि प्रकट्यौ हरिचन्द

युद्ध-वीर

केसरिया बागो पहिरि, कर कंकण, उर माल,
रण-दूलह ! बरि लाइयौ, दुलहिन बिजय-सुबाल ।
औघट घाट कृपाण कौ, समर-धार बिनु पार,
सनमुख जे उतरे तरे, परे बिमुख मँझधार ।
दीठि बिमुख ढीठी ठवै, गिनत न ईठ-अनीठ,
घालत दै-दै पीठ सर. तानि-तानि सर-पीठ ।
धनि-धनि, सो सुकृती व्रती, सूर-सूर, सत-सन्ध !
खंग खोलि खुलि खेत पै. खेलतु जासु कबन्ध ।
लखु काल सों लाख में, कोई माई कौ लाल,
कहु, केते करवाल कों, करत कंठ-रूल माल ?
धन्य, भीम ! रण-धीर तूँ, धरि अरि-छाती पात्र,
भरि अँगुरिनि शोणितु पियौ, इन मूँछनि दै ताव !
धन्य, कर्ण ! रिपु-रक्त सों, दियौ पूरि रण-कुंड,
करि कन्दुक अति चाव सां, उछरि उछारे मुंड !
सहज बजावत गाल त्यौं, सहज फुलावन गाल,
काल-गाल में रिपु-दलै कठिन गेरिबो हाल ।
रण सुभट्ट वै भुट्ट-लौं, गहि असि कट्टत मुंड,
उठि कबन्ध जुट्टत कहूँ, कहुँ लुट्टत रिपु-रुंड ।

वीर-नेत्र

होति लाख में एक कहुँ, अग्नि-बर्न वह आँख;
देखत हीं दहि करति जो, दुवन-दोह दलु राख ।
नयन कंज, खजन-मधुप, मद, मृग, मीन समान;
लोहितु और अँगारु मैं, द्वै अनुपम उपमान ।

सुभट-नयन अंगारु पै, अचरज एक लखातु,
ज्यौं-ज्यौं परतु उमाह-जलु, त्यौं-त्यौं धधकत जातु।
जाव फूटि रति-रँग-रली, अलमौहीं वह आँख,
सहज-ओज-ज्वाला-ज्वलित, चिरजीवौ जुग लाख।
सुरत-रंगु कहँ दृगनि में, कहँ रण-ओज-उदोतु,
याते उज्जल होतु मुख, वाते कज्जल होतु।
युद्ध-रत्त-दृग-रक्त की, कहा रक्त-सँग लाग,
लागतु यातें दाग, वह, मेटतु हिय कौ दाग।
सहज सूर-नैननि लख्यौ, सील-ओज-संचारु,
एकै रस निबसतु तहाँ, पानिय औरु अँगारु।
जदपि रुद्ध-बल-तेज कौ, कियौ न प्रगटि प्रकासु;
दिपतु तऊ अँखियान ह्वै, अन्तर-ओज-उजासु।

खड्ग

पर्यौ समुझि नहिं आजु-लौं, या अचरजु कौ हेतु;
हर्यौ असित असि-लता में, सुजसु-चारु-फलु सेतु।
जदपि हतो पानिप चढ़्यौ, अचरजु तदपि रुहान;
नित-प्रति प्यासी ही रही, लही न तृप्ति कृपान!
बसति आपु लघु म्यान में, वह कृपान लघु गात,
त्रिभुवन में न समातु पै, सुजसु तासु अवदात।
प्रलय-कारिनी तुव, छता! लपलपाति तलवार;
खात-खात खल-सीस जो, लई न अजहुँ डकार!
बसै जहाँ करबाल! तू, रमै तहाँ किमि बाल?
एक संग निवसति कहूँ, ज्वाल, मालती-माल?
धारि सील, असि-बालिके! अब तू भयी सयानि;
अरी हठीली! कित तजी, वह इठलाहट-बानि?

लहरति, चमकति चाव सों, यों तरवार अनूप;
धाय डसति, चौंधति चखनि, नागिनि-दामिनि-रूप !
करति मरम तरवार जो, सांइ प्रखर तरवार;
जानत कबहुँ कृपा न करि, कढ़िय कृपान करार !
सुभट लाल, असि-दूतिका, ठाढ़ी सुमुखि-सयानि;
मानिनि बसुधा-बाल कौ, यही गहावति पानि।
रण-नामक-भामिनि तुहीं, कुल-कामिनि करवाल !
अजहुँ प्रोतम-कंठ तूं, भई लपटि रति-माल !
सोभित नील असीन पै, रुधिर-बिन्दु-कृत जाल !
लसति तमाल-लतान पै, मनहुँ बधूटी-माल !

भीष्म-प्रतिज्ञा

रहि हौं अस्त्र गहाय कै, रखि निज प्रन की लाज;
कै अब भीषम ही यहाँ, कै तुमहीं, जदुराज !
सरनि ढाँपि रबि-मंडलहि, शोणित-सरित अन्हाय;
तेरी ही सौं तोहिं हरि ! रहिहौं अस्त्र गहाय।
इत पारथ-रथ-सारथी, उत भीषम रन-धीर;
तिलहूँ नहिं टारे टरैं, दुहूँ बज्र-प्रन-बीर।
मुख श्रम-सीकर, दृग अरुन, रन-रँग-रंजित केस;
फहरतु पटु, गहि चक्र हरि, धाये सुभट-सुवेस !
कच रज-रंजित, रुधिर मिलि, झलकत श्रम-कन अंग,
फहरतु पटु गहि चक्र हरि, धाये करि प्रन-भंग !
प्रन कीनों बहु बीर जग, टेकहुँ गही अनेक;
पै भीषम-व्रत आजु लौं, है भीषम-व्रत एक !
सम सरि कासों कीजियै, मिल्यौ नाहिं उपमान;
भीषम-सों भीषम भयौ, वह भीषम व्रतवान !

युद्ध-दर्शन

सुन्यो प्रलय-घन-घोर लौं, जब सैनिक रण-संख;
किलकि-किलकि, कूदे समर, भरि उड़ान बिनु पंख !
चलीं चमाचम कोप सों, चकचौंधिनि तरवार,
पटी लोथ पै लोथ त्यौं, बही रक्त-नद-धार !
नहिं यह झरना गेरु कौ, नाहिं शृंग यह स्याम;
असि-विदीर्ण कटि-कुम्भ तें, स्रवत शोण अविराम।
तुरँग, तोय, तरवार तहँ, निज-निज पूरत काजु;
धूरि-धूम-लोहित मयी, सृजत सृष्टि मनु आजु।

अभिमन्यु

जइयौ चितवत चाव सों प्रिया उत्तरा-ओर ;
ना जानैं, कब लौटि हो, प्यारे पार्थ-किसोर !
धन्य, उत्तरा-उर-धनी ! धन्य, सुभद्रा नन्द !
धनि भारत-भट अग्रनी ! पार्थ-पयोनिधि-चन्द !
धन्य, पार्थ-चख-चन्द ! हूँ, धन्य सुभद्रा-लाल !
सातहुँ महारथीन सों, कियौ युद्ध विकराल !

महाराणा प्रताप

अणु-अणु पै मेवाड़ के, छपी तिहारी छाप,
तेरे प्रखर प्रताप तें, राणा प्रबल प्रताप।
जगत जाहि खोजत फिरैं, सो स्वतन्त्रता आप,
विकल तोहिं हेरत भ्रमौं, राणा विधुर प्रताप।

हे प्रताप ! मेवाड़ में तुम्हीं समर्थ, सनाथ ।
धनि ! धनि ! तेरे हाथ ए, धनि ! धनि ! तेरो माथ !
रजपूतन की नाक तूँ, राणा प्रबल - प्रताप !
है तेरी ही मूँछ की, राजथान में छाप ।
काँटे लौं कसक्यौ सदा, को अक्बर-उर-माहिं ?
छाँड़ि प्रताप-प्रताप जग, दूजो लखियतु नाहिं ।
ओ, प्रताप मेवाड़ के ! यह कैसो तुव काम ?
खात खलन तुव खड्ग, पै, होत काल कौ नाम !
उमड़ि समुद्र-समुद्र-लौं, हिले आपु तें आपु ;
करुण-वीर-रस-लौं मिले, सक्ता और प्रताप !

छत्रपति शिवाजी

किधौं रौद्र-रस रुद्र कै, किधौं ओज-अवतार ,
साह-सुवन सिवराज ! तैं, किधौं प्रलय साकार ?
रखी तुहीं सरजा सिवा ! दलित हिन्द की लाज ;
निरवलम्ब हिन्दून कौं तूँही भयो जहाज ।
यही रुद्र-अवतार है, यही सुभैरव-रूप !
येही भीषण भीम है, सिवा भौंसिला-भूप ॥
औरँगहू तुव धाक तें, भाजतु भामिनि-भौन ;
है लोहा तुव सँग, सिवा !, लेनहार फिरि कौन ?
नित-प्रति सेवा खलनु की, तोहिं कलेवा देत ;
पेट खलावत, काल ! तैं, तऊ आय रण-खेत ।
गरब करत कत बावरे, उमँगि उच्च गिरि-अंग !
जस-गौरव सिवराज कौ, इत नभ तेहु उतंग !
"करकी क्यों आपुहि चुरी ?" कहत हरम अकुलाय ,
"सुन्यो नाहिं, आवत सिवा, समर-निसान बजाय ?"

किते न तोपनु तें सिवा, दृढ़ गढ़ दिये ढहाय ;
केतं सुरँग लगाय कैं दिये न दुर्ग उड़ाय।

ह्वै तौ विजयी विस्व में, अजित राम-गढ़-राज !
गहि कृपान अरि काटि हौ, राखि हिन्द की लाज ;

महाराज छत्रसाल

छत्रसाल नृप ! नाम तुव, मंगल-मोद-निधान ,
सुमिरि जाहिं अजहूँ बनिक, खोलत प्रात दुकान !

चम्पत को बच्चा तुहीं, है इक सच्चा शेर ,
जब्बर बब्बर-बंस के, किये न केते जेर !

रैयत-हित-हिय-दानु दिय, हथियारन-हित हाथ ;
छत्रसाल, धनि ! कृष्ण-हित, नैन, धर्म-हित माथ !

गहि कृपान-कुस नृप छता, दियौ तेहिं नित दानु ;
तऊ कृतघ्नी काल ! तैं, नहिं मानत एहसानु।

ग्रसित ग्राह-अवरंग-मुख, खंड बुँदेल-गयन्द ,
उमंगि उधार्‌यो धाय, धनि, हरि-इव चम्पत-नन्द !

धनि, छत्ता ! तुव खग्ग, धनि !, रण-अडग्ग पवि-देह ;
बहु मूँछनवारेन कों, मरदि मिलायौ खेह।

नहिं छत्ता ! परवाह कछु, तोहिं साह के द्वार ,
है तू ब्रज-दरबार कौ, ऐंडदार सरदार !

छत्रसाल नृप-धाक तें, बड़े बड़े थहरायँ ;
कहुँ 'छकार' के सुनत ही, छूटि न छक्के जायँ !

असि-भुजंगिनी-अंगना, संग समर संजोग ;
भोगैं भुज-भुजगेन्द्र वो, छता ! छत्रपति-भोग !

कहूँ बिपत, कहुँ भयौ, तूँ. सम्पत, चम्पत-लाल !
दुष्टन-हित करवाल भो, अरु इष्टन-हित ढाल !
चम्पत ! खंडबुँदेल की, तैं पत राखनहारु;
डूबत हम हिन्दून कौं; तुव कुमारु कनधारु !

दुर्गावती

धन्य सती दुर्गावती ! करि गढ़-मंडल राज,
रखी गौड़वानैं तुहीं, खड्ग-धर्म की लाज !
वज्र कवच तनु, कन्ध धनु, कर कृपाण, कटि ढाल,
गढ़-मंडल-दुर्गावती, रण-दुर्गा बिकराल,
मत्त मुग़ल-दल दलमल्यौ, गढ़-मंडल रण ठानि !
धनि, दुर्गा दुर्गावती !, रखी तुहीं कुल-कानि।

लक्ष्मीबाई

तजि कमलासनु कर-कमलु, गहि तुरंग-तरवार,
कुल - कमला कीली भई, झाँसी-दुरग-दुआर,
हौं देख्यो अचरज अबै, झाँसी-दुरग-अपार,
दृग-कमलनि अंगार, त्यौं, कर-कमलनि तरवार !
भइ प्रगटि रण-कालिका, गढ़ झाँसी-परतच्छ,
सुभट सँहारे लच्छमी, लच्छ-लच्छ कटि लच्छ !
जय झाँसी-गढ़ लच्छमी !. राजति त्रिविध अनूप,
गति चपला, द्युति चन्द्रिका, समर चंडिका रूप।

विविध

जाव भलैं कुरु-राज पै, धारि दूत - बर बेस,
जइयो भूलि न कहुँ वहाँ, केसव द्रौपदि - केस !
स्याम-बान सररात औ, तड़कि ताप तररात !
सुथिर अथिर थहरात त्यौं, दुर्ग-दीह अररात !

लेखेही ऋतु लेखियत, नितप्रति ग्रीषम साथ,
जठर-ज्वाल तें जरि रहे, हम अनाथ जग-नाथ !

बिना मान तजि दीजियौ, सुरगहुँ सुकृति-समेत,
कहौ मान, तौ कीजियौ, नरकहुँ नित्य निकेत !

अन्तहुँ अरिहिं न सौंपिये, करियौ प्रण-प्रतिपाल,
निज भाँवरि की भामिनी, निज कर की करबाल ।

बीर-बधू ! तुव सवति वह, बिजय-बधू नवबाल,
तासु गरें गेरति तऊ, कहा जानि रति-माल !

भ्रमित-भीत अरि-नारियाँ, सगबग भाजति जाहिं,
आगें देखति नाहिं, त्यौं, पाछें हेरति नाहिं ।

दनुज - दलन सौमित्रि - सर, मारुति - मुष्टि-प्रहार,
भीष्म - अतुल बिक्रम, तिहूँ, ब्रह्मचर्य - व्रत - सार ।

दृगनि ओज-लाली लसै, रुधिर - पियाली हाथ,
काल-नटी काली किलकि, नटति कपाली-साथ ।

साधतु साधतु एक ही, तजि अनेक बुधि-सीम,
धनुष-सिद्ध अर्जुन भयौ, गदा-सिद्ध भो भीम ।

लै असि-हल, जोती मही, बोयो सीस सुधान,
करि सुचि खेती, जस लुन्यो, धनि रजपूत किसान !

ह्वै सबलनु कों सूल जो, करत निबल-प्रतिपाल,
बीर-जननि को लाल सो, अहै धर्म की ढाल !

करै जाति स्वाधीन जो, साँचो सोइ सुपूत,
यौं तौ, कहु, केते नहीं, कायर कूर कुपूत,

फलति न हिम्मति खेत में, बहति न असि-व्रत-धार,

बल-बिक्रम की बोरियाँ, बिकतिं न हाट-बजार ।

नहिं बद्दल-दल-चल यहै, तडित न यह, किरपान,
नहिं घन गाजत गहगहे, बाजत तुमुल निसान।
लिखे हमारे भाल पै, अंक नी अर्थ अधीन,
ज्यों पानीपत पै भये, हम पानीपन-हीन।

को न अनय-मग पगु धर्यौ, लहि इहि कुमति कुदानु,
न्याय-पतित भे भीषमहुँ. भखि दुरजोधन-धानु।
अथयौ सो अथयौ, न पुनि, उनयौ भीषम-भान,
आर्य - सक्ति - जय-पद्मिनी, परी तबहिं ते म्लान।

जथा राम - रावन - समर, नीरद - नाद - बिहीन,
भारत-युद्ध अपूर्न त्यौं, बिना कर्न प्रन-पीन;
'जराधीन अँग छीन हौं, दीन दन्त-नख-हीन,'
नहिं ऐसी चिन्ता कहूँ, कबहुँ केहरी कीन।

रचि-रचि कोरी कल्पना; बहुत जल्पना, मूढ़,
सहज सती अरु सूर कौ, गति-रहस्य अति गूढ़।
निबल, निरुद्यम, निर्धनी, नास्तिक, निपट निरास,
जड़, कादर करि देतु है, नरहिं अन्धविस्वास।
भाजत भग्गुल भभरि जहँ, खुलि खेलत तहँ बीर,
जरत सुरासुर जाहिं लखि, पियत ताहिं सिव धीर;

मतवारे सब ह्वै रहे, मतवारे मत माहिं,
सिर उतारि सतधर्म पै, कोउ चढ़ावत नाहिं,
तजि देती जो पै कहूँ, कोइल काग-कठोर
तौ होती पच्छीनु में, साँचेहुँ तैं सिरमौर।

कारण कहुँ, कारज कहूँ, अचरज कहत बनौन,
असि तौ पीवति रकत पै, होत रकत तुव नैन।

पावस ही में धनुष अब, सरित-तीर ही तीर,
रोदन ही में लाल दृग, नौरस ही में बीर।

टेक-टेक केते कहत, हठहू गहत अनेक,
पै कहँ हठ हम्मीर की, कहँ प्रताप की टेक।

नैननि नित किन राखिये, तिनकी पायन-धूरि,
पूरि पैज जे मरद की, भये युद्ध मधि चूरि।

भर्‌यौ रक्त नहिं, जिन दृगनि देखि आत्म-अपमान,
क्यों न बिधे तिन में बिधे, शूल विषम विष-बान।

नभ जिमि बिन ससि सूर के, जिमि पंछी बिन पाँख,
बिना जीव जिमि देह, तिमि बिना ओज यह आँख।

लखि सतीत्व-अपमानहूँ, भये न जे दृग लाल,
नीबू-नौन निचोरिये, छेदि फोरिये हाल।

श्री वियोगीहरि जी के मुख्य ग्रन्थ

काव्य—वीर-सतसई।

गद्य-काव्य—अन्तर्नाद।

संग्रह—व्रज-माधुरी-सार।

गद्य—साहित्य-विहार, प्रेम-योग।

मिश्र-बन्धु

रावराजा डाक्टर श्यामविहारी मिश्र, रायबहादुर एम० ए०, डी-लिट्०
रायबहादुर पंडित शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०

पंडित बालदत्त जी मिश्र के वंश-भूषण रावराजा डाक्टर श्याम विहारी का जन्म ग्राम इँटौंजा ज़िला लखनऊ में संवत् १९३० में और छोटे मिश्रजी का संवत् १९३५ में हुआ। रावराजा संवत् १९५० में
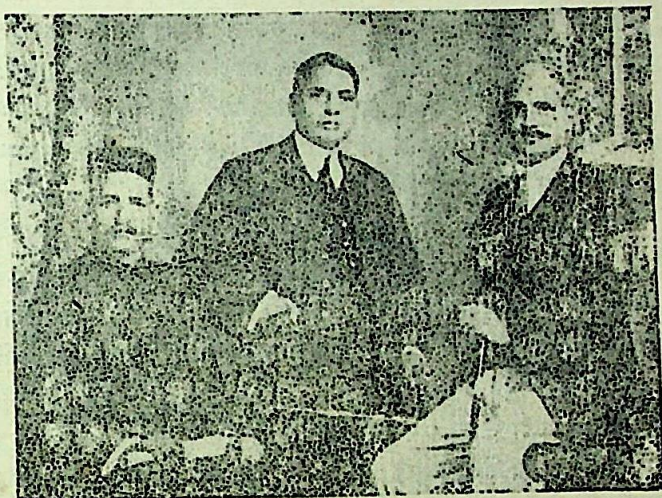
गणेशविहारी मिश्र शुकदेवविहारी मिश्र श्यामविहारी मिश्र

अँगरेज़ी में प्रथमश्रेणी में विशेष योग्यता के साथ बी० ए० तथा १९५३ में एम० ए० पास कर डिप्टी-कलक्टर हुए। कोआपरेटिव विभाग में रजिस्ट्रार आदि कई प्रतिष्ठित पदों पर रह कर डिप्टी-कमिश्नर नियुक्त

हुए। संवत् १६५८ में पैन्शन पाकर ओरछा राज्य में दीवान बनाये गये। अब आप वहीं प्रधान-मन्त्री हैं। संवत् १६८५ में रायबहादुर १६६१ में ओरछा राज्य से रावराजा तथा १६६५ में प्रयाग-विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उपाधियाँ मिलीं। संवत् १६६७ से १६७१ तक आप छतरपूर राज्य में भी दीवान रहे।

छोटे मिश्रजी ने संवत् १६५७ में बी० ए० और १६५८ में वकालत की परीक्षा पास की तथा ५ बरस तक वकालत कर मुन्सिफ होकर जज हुए। तत्पश्चात् साढ़े पन्द्रह बरस तक छतरपुर राज्य में दीवान रहे। संवत् १६८३ में आपको सरकार से राय बहादुर की उपाधि मिली।

संवत् १६५५ से दोनों मिश्र-बन्धु साथ-साथ साहित्य-सेवा कर रहे हैं। दोनों सफल समालोचक, सुकवि, सुयोग्य लेखक और साहित्य के प्रगाढ़ पंडित हैं। आपने ही सबसे प्रथम हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक सुव्यवस्थित इतिहास लिख कर इस ओर हिन्दी-संसार का ध्यान आकृष्ट किया और 'हिन्दी-नवरत्न' लिख कर मार्मिक-विवेचनात्मक आलोचना का पथ-प्रदर्शित किया।

दोनों बन्धुओं ने व्रजभाषा में पर्याप्त सुन्दर रचनाएँ की हैं, जिनमें सजीव और साकार वर्णन बड़ा ही प्रभाव-पूर्ण है। आपका शब्द-संगठन सर्वथा भाव-प्रभाव-पूर्ण रहता है। वाक्य-विन्यास सुव्यवस्थित, संयत और सबल होता है तथा प्रसाद, ओज और माधुर्य गुण अच्छे रूपों में मिलते हैं।

मिश्र-बन्धुओं ने साहित्य के एक-दो क्षेत्र में ही कार्य नहीं किया, वरन् उसके प्रायः सभी प्रमुख अंगों की पूर्ति का सुप्रयत्न किया है। आप नाटककार, इतिहास-लेखक, काव्य-शास्त्र-मर्मज्ञ, सम्पादक और टीकाकार भी हैं। अतएव कहना चाहिए कि मिश्र-बन्धुओं में बहुमुखी प्रतिभा है।

जीवात्मा और परमात्मा

है तौ जीव औंसि पै जू थिरकै अथिर एक,
सक्ति कैधौं व्यक्ति, यह मरम ललाम हैं,
दास-भाव रामानुजवारो ठीक बैठे कैधौं,
सीमित अद्वैतवाद साँचो गुन धाम है;
इतै तौ बिचार-बल सबै दरसात पंगु,
भाष्यो तुलसी हू, ह्याँ तरक को न काम है,
ररंकार मूल चाहै दसरथनन्द मानौ,
साँचो बिसवास मैं लखात रामनाम है।

सब गुन-हीन, सब करम-विहीन पुन्य,
पापन सों छीन, रूप-रंग हू सों न्यारौ है,
सब सों बिरक्त, सब ही सों अनुरक्त,
वासनानि को न भक्त, वासनानि को सहारौ है;
अक अरु, आनँद सों रहत उदास तऊ,
सत-चित-आनँद, जगत-रखवारौ है,
सब सों पृथक पुनि सब के समीप,
जगदीस, जग-रूप, एक ईस्वर हमारौ है।

नेति-नेति ईस्वर को बेद औ पुरान भाषैं,
ताके बल-तेज को न अन्त दरसानो है,
होत अवतार जो बिसेख ईस अंस-भव,
ताहू को न बल-अन्त जग मैं लखानो है;
तदपि अमोघ ईस-बल की सकै न करि,
तुलना कछूक अवतार मनमानो है।
ईस को अनादर कियो न; तिन करि जिन,
या बिधि बिचार अवतार सनमानो है।

अधम-उधारन को धारी है सुबानि कत,
अधम-उधारन सों जो पै सकुचात हौ,
दीन-बन्धु काहे ते कहावत जहान मैं जु,
दीन दुखहारन मैं धरे ढोल गात हौ;

करुना-निधान की उपाधि तजि देहु जु पै,
साफ इनसाफ करिबे को ललचात हौ,
पतितन-पावन को छाँड़ौ नाम जो पै मो से,
पतित पुनीत करिबे को न सिहात हौ।

होते जो न मोसे क्रूर-पतित जहान मैं तो,
कैसे तुम पतित-पुनीत कहवावते?
करते न ढेर हम पातक-पहार, तौ न,
करुना-निधान को बिरदु तुम पावते;

दोषन के जूहन को धारि, पछिताय जो न,
हा-हा! करि हम दीनताई दरसावते,
कढ़ते तौ कोमल तुम्हारे गुन-गुन कैसे,
कैसे पुनि भगत सुजस तुव गावते?

रावरी कृपा की कोर लहि कै कछूक गहि,
गरब गँभीर पाप-पुंजन कमायौं मैं,
देसन को चूर करि, सतगुन दूर करि,
क्रूर बनि केवल, कुगुन अपनायौं मैं,

सब को समान सतकार कै उदार ह्वै कै,
जग-उपकार मैं कबौं न मन लायौं मैं,
आरत ह्वै भारत पुकारत है नाथ! अब,
त्राहि-त्राहि! रावरी सरन तकि आयौं मैं।

सुन्दरता-वर्णन

आई कहाँ सों इहाँ मृगलोचनि, रूप धरे रति सों अति नीको,
रेसम-तार से बार बने, परभा-मुख पेखि परै ससि फीको;
बाँधन-हेत मृगा-मन के, तव बीन समान बजै बरबानी,
कै यह मोहन-मन्त्र किधौं. गुन-खानि सुधा-बसुधा सुखदानी।

चन्द छटा सी हँसी बिलसी, निरखे मन जोगिन के हुलसावै,
त्यों रतनारे बिलोचन हैं जिन सों मद-धार सी धावति आवै;
चारु, कृशोदर पै त्रिबली छबि-भार सों और बली छबि छाजै,
बेस बसीकर-जन्त्र समान, महा सुकुमार सरीर बिराजै।

अन्धकार सम चारु, स्याम कच-रासि बिराजै,
लम्बित लट अवलोकि धीर तपसिन को भाजै;
चंचल नागिनि सरिस, रुचिर वेनी कटि परसै,
सीस-फूल कच - रासि - बीच मंगल - सम दरसै;
मकराकृत कुंडल रसाल कानन छबि देहीं,
तिन मैं झुमका झमकि लूटि चख की गति लेहीं;
मुख-छबि कोमल कंज-सरिस मंजुल सुखकारी,
आभा-पूरन चन्द मनी तिहुँ पुर उजियारी।

आनन सों मनु झरैं मुकुत बोलत जेहि बारी,
लगै बसीकर-मन्त्र-सरिस तव बात पियारी;
नाक-बीच लघु नथ बिसाल सोभा उपजावै,
लहि मनु कुंडल कीर चाव सों भरो झुलावै।

तामैं मुकुता झूलि-झूलि अधरन कँह परसैं,
निज समान गुनि दन्त मनो देखन कहँ तरसैं;
कुंजर सी तव चाल समद झूमत सुख-दायक,
कंचन-लतिका-सरिस गात मन-जीतन लायक।

वीर नायक वर्णन

जीतन संगर मैं अरि-जालन आनन माँहिं बसी ललकार है,
दीनन के हित दच्छिन बाहु बनी सुखदा सुर-पादप-डार है;
श्री सरजा सिव आजु सही बसुधा-तल पै जस को अवतार है,
है भुवपाल तुही जग मैं भुज-दंडन पै तव भू-तल-भार है।

प्रबल प्रचंड मारतंड सों तपाय नीको,
छायो तेज दसहू दिसान अनियारो है,
बैरिन के मद परिपूरन को चूरन कै,
सूरन को निज सरनागत निहारो है,

दीनन को देत अभै-दान नित जाही बिधि,
गब्बरन त्यों हीं बिनु मान करि डारो है,
सिवाजी खुमान हौं बखान केहि भाँति करौं,
बढ़ि सब ही ते लखो सुजस तिहारो है।

सेना वर्णन

धावत अडोल दल-बल सों मही-तल पै,
ही-तल अरिन्दन के हालत हहरि हैं,
उछलत चलत तुरंगन के आवैं रिपु,
जूथन को मानो नाग-दंसित लहरि हैं;
पग मग धरत धरा को धसकत दिग-,
सिन्धुर समान बर कुंजर चलत हैं,
धारि कर सांकरि सजोम उलभारि मद,
गारि जे पछारि मृग-राजन मलत हैं।

अरजत दौंन, लरजत कुंडलीस,
गरजत दिग-सिन्धुर चलत जब दीह दल,
कहलत कूरम, दिगीस दहलत,
दिगदन्ति टहलत, पारि जगत मैं खलभल ;

दान दुज पावत, सुनावत असीस, जस,
गावत करत नहिं चारन चतुर कल,
पूरन प्रताप भूप दस दिसि चूरत औ,
बैरिन के तूरत करेजन धरनि-तल ।

धावत प्रबल बल धारि कै सकल दल,
तासु परिपूरन प्रताप जग छायो है,
उदित विलोकि ताहि कोटि मारतंड सम,
देखि निज छीनता दिवाकर लजायो है ;

मानि जग-हित बिनु काज निज तेज ताहि,
गोपन बिचारि दिनकर मन लायो है,
ताही सों प्रचंड धूरि-धार की सहाय लहि,
जूगनू-समान रूप आपनो बनायो है ।

मीतन सों भाखत अपर बीर आजु तव,
असि को प्रचंड रूप औरई लखात है,
देखि कै प्रताप जासु जगत उजासकर,
खासकर भासकर हू लौं दबि जात है ;

तेग को किरन-गन चलत गगन-दिसि,
बैरिन को भाल जिन्हैं देखि बिललात है,
साथ तिनहीं के अरि प्रानन को जाल अब,
हीं सों सूर-मंडल को बेधत लखात है ।

बिनु माँगेहु जे बकसि देत गज बाजि हजारन,
लखि दीनन जे करैं सदा बड़ बिपति-बिदारन;
समर-बीच गिरि-सरिस करिन के कुम्भ निपातैं,
अवगाहैं तिमि रास माहिं रस की सब घातैं;
अब तिन भुज-दंडन को प्रकट, प्रबल पराक्रम कीजिये,
महि-राज-मंडली मैं महा, राज-प्रवर जस लीजिये।

तव प्रताप सों नाथु आजु चंडी बल पाई,
धरि कर मैं करवाल काल-सम ओज बढ़ाई,
कीट-सरिस रिपु-सैन सकल संगर मैं काटैं,
खाईं रन-थल माँहि बैरि-लोथिन सों पाटैं;
जबलौं सोनित को बिन्दु इक, तन मैं संचालन करिहि,
तबलौं नहिं जोधन को चरन रन, मँहि सो छिनहू टरिहि।

अंग-अंग कटि परैं तऊ उतसाह न छंडैं;
मरत-मरत दुइ-चार सत्रु हनि कै जस मंडैं;
जनम-भूमि के सुत सपूत रहिबो अभिलाखैं,
स्वामि-लोन की लाज प्रान रहिबो लौं राखैं;
थिर अंगद सों जोधा-चरन, को डिगाय रन सों सकै,
जब लौं जीवत नर एकहू, को भारत की दिसि तकै?

मातु कै समीप फेरि चाव सों महा पगो,
माँगिबे बिदा भुवाल जाय पाँय सों लगो;
देखि कै सपूत को हुलास जंग सों महा,
जानि कै सुबीर ताहि मातु मोद को लहा;
राज देइ, पाट देइ, मान देति है बिसाल;
अन्न-धन देइ त्यों करै सदा महा निहाल।
माहुँ सों बिसेस तौन जन्म-भूमि को बिचारु;
ताहि पालिबे सपूत तू, सदा हथ्यार धारु।

तो देखि साज रन-हेत उछाह पूरो;
भो आजु मोहि परिपूरन तोष रूरो ;
नौ मास तोहिं जब पेट मँझार धार्यो;
तौ बीर होन-हित जुक्ति सबै बिचार्यो।
तेरो पिता प्रबल जुद्धन को पधार्यो;
ताके चरित्र-चित मैं तव हेत धार्यो ;
बाँची अनेक बर-बीरन की कहानी;
पूजीं सदा सकल देवि प्रभाव सानी।

सुत को मस्तक चूमि चाव सों,
मातु बिदा यहि भाँति दियो ;
जाहु करहु संचित जस रन मैं,
जिमि अब लौं पुरिखान कियो।

यहि प्रकार लहि बिदा मातु सों भूप महा मन-मोद भर्यो,
चल्यो समर-हित इमि आनन्दित, मनौ पाँय रिपु आप पर्यो ;

धन्य धन्य हे बिसद बीर जोधा बलसाली,
तव भुज-बल सों चढ़ी सदा भारत-मुख-लाली;
जब लौं ये भुज-दंड चंड फरकैं अति घोरा,
चपला सी करवाल लाल चमकैं चहुँ ओरा:
तब लौं हम काढ़ें तासु चख. आँखि जौन सनमुख करै,
को भूप भृकुटि लखि भंग नहिं, थरथराय भू-तल परै ?

रिपु-गन को लखि ढीठ मान-मरदन-हित भारी,
करि संगर-हित सरंजाम-सह आजु तयारी;
जब लौं रबि-कर करैं कालि उदयाचल-चुम्बन,
तासु प्रथम सब चलौ सुजस लूटन जोधा-गन;
करि पूरित कालि दिगन्त लौं, बड़ि धुकार धौंसान की,
हिरदो हलाय रिपु को करौ. सिथिल मानि अभिमान की।

परे रुंडन पै रुंड औ बितुंड बिनु सुंड कटे,
बाजि, रथ, कवच अमित दरसात;
भूषननि-जटित भुजा हैं रन-खेत-परीं,
अंग-भंग सुभट अनेकन लखात;
चढ़ी भौहैं ज्यों कमानौं, परे मुंड बेसुमार,
सूर घायल अधर कहूं दाँतन चबात;
बही सोनित की धार, भरी हाड़-मेद-मास,
मनौ रौद्र पै बिभत्स को दखल भयो जात।

युद्ध के दाँव-पेच

प्रचंड तोप-माल सों कढ़ी महान धूम-धार,
दसौ दिसा अकास मैं सुमेघ सी मढ़ी अपार;
कढ़ी हुती रिसाग्नि सों बिलोकि तौन घोर भाव,
न भूमि सींचिवे बिचार मैं धर्‌यो कछूक चाव।

बहु गोलन बरसाय पुहुमि पर आपद छायो,
पितु को दारुन रूप मनो जग को दरसायो;
तोपन सों कढ़ि चलै लाल गोला जब भारी,
चमकैं तब चंचला मनो घन मैं पनधारी;

सौदामिनि-सम लाल लाल गोला पुनि धाई,
देहिं समर-थल माहिँ अमित रिपु-गन झरसाई;
गोलन सों अँग-अँग सुभट गज, बाजिन, केरे,
कटि-कटि उड़ि-उड़ि व्योम परैं महि पै चहुँ फेरे;

कछु काल चलि प्रति सैन के जुग भाग चारु बनाय,
लखि दूरि गोली-मार लौं अरि जूझ-हित ललचाय;
बहु मोरचे रचि जंग-हेत उमंग धारि महान,
भट लगे बरसन [illegible] सों निकराल गोली बान;

जब दगैं बर बन्दूक गाजत मेघ सी निर्दि ठोर,
तब निकसि पावक-ज्वाल तिन सों चलै अरि की ओर ;
मनु धारि रूप कराल दारुन बीर-गनै को कोप,
रिपु ओर धावत तेज तिन को गुनत करिबे लोप।

अगयार आयुध-माल सों कढ़ि धूम-धार महान,
घनघोर सी तहँ धूमि लीन्हो छाय सब असमान;
तेहि माहिँ पावक-रेख भीषम लसैं थिर यहि भाँति,
मनु मेघ सों थिर कढ़ी नूतन चचला की पाँति;

जल-धार ठौर कराल गोली-बान-वर्षा पीन,
जुरि करत हैं ते मेघ अरि पै रीति धारि नवीन;
मनु मेघनाद-समान रन मैं धूम की धरि ओट,
वर बीर भूपति देस के हित करैं अरि पै चोट।

ह्वै रन मैं उनमत्त सूर-गन तन को घाव न जानैं,
जननी-जनम-भूमि थाहन-हित मरिबोई भल मानैं;
धावत रिपु-दल ओर बीर बहु लहि गोली की चंटैं,
ह्वै असमर्थ समर त्यागन के दुख सों सर धुनि लोटैं।

परि अचूक असि कहूँ कन्ध पर बीरन केरे,
काटि कवच सह गात करैं तन के जुग घेरे;
करि पैंतरे सवेग कहूँ अरि-वार बचाई,
घायल सिंह-समान बीर बाहैं असि धाई;

सनि सोनित सौं लाल-लाल असि-रूप लखानो,
करि मधु-पान कराल कालिका नाचति मानो;
जिमि-जिमि सोनित पियैं तमकि रन मैं तरवारी,
तिम-तिम तिनकी प्रबल प्यास जागति जनु भारी;

एक ओर तल्लीन देखि अरि-दल बलवाना,
दूजी दिसि सों धाय तुरँग-सेना सविधाना;
प्रबल बेग धरि करै अचानक अरि पै वारा,
सावन-झरि सी बरसि कठिन अस्त्रन की धारा।

संग्राम भूरि यहि भाँति प्रचंड माच्यो,
मानौ सरूप धरि कै रन काल नाच्यो;
पेख्यो अरीन रन मैं जब जोम धारे,
देखे मिले दल दुवौ सहसा हुँकारे।

धायो सबेग दल दन्तिन को कराला,
पूरे दिगन्त रव घंटन को बिसाला;
ते भीमकाय रज कज्जल-सैल मानो,
धाये पयोद रन को अथवा प्रमानो।

धारे सजोम कर साँकरि को घुमावैं,
कै सिंह-नाद अरि पै उनमत्त धावैं;
देखैं जहाँ प्रबल जूथप-जूथ ठाढ़े,
पैठैं तहाँ करि प्रचंड प्रभाव बाढ़े।

गज देखि आवत शत्रु को कहुँ पीलवान रिसाय,
मद-मत्त कुंजर चाव सों लै चलै ओज बढ़ाय;
सहि सीस अंकुस कोप करि गज सुंड-पुच्छ उठाय,
उनमत्त धावहिं मनहु सेल सपच्छ दीरघु काय।

मिश्र-बन्धुओं के ग्रन्थ

काव्य—पद्य-पुष्पांजलि—(लव-कुश-चरित्र, भारत-विनयादि)।
नाटक—नेत्रोन्मीलन, पूर्वभारत, उत्तरभारत, शिवाजी, ईशान वर्मन, प्राचीन में नवीन (रामचन्द्र नाटक), पियक्कड़-पतन (एकांकी)।

काव्य-शास्त्र—साहित्य-पारिजात ।

उपन्यास—वीरमणि ।

आलोचना—हिन्दी-नवरत्न, हिन्दी-साहित्य का इतिहास, (दोनों के संक्षिप्त-संस्करण) मिश्रबन्धु-विनोद (४ भाग)

टीका और सम्पादित—भूषण-ग्रन्थावली, देवसुधा, विहारी-सुधा, कवि-कुल-कंठाभरण, सूर-सुधा ।

डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी

त्रिपाठी जी का जन्म संवत् १९४६ में मुजफ्फरनगर में पंडित मुक्ताप्रसाद त्रिपाठी के घर में हुआ। आपके पूर्वजों की जन्म-भूमि कानपुर ज़िले के सैंबसू ग्राम में है। बाल्य-काल ही से आपने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया था।

आपने प्रतापगढ़ तथा सुल्तान-पुर के स्कूलों में पढ़ कर सेन्ट्रल हिन्दू कालेज से बी० ए० पास किया। फिर गवर्नमेन्ट कालेज, लाहौर से इतिहास का विषय लेकर आपने एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की और संवत् १९७१ में लखनऊ के क्रिश्चियन कालेज में प्रोफेसर नियुक्त हुए। वहाँ से प्रयाग विश्व-विद्यालय में संवत् १९७३ वि० में इतिहास के अध्यापक होकर आ गये

संवत् १९८१ में आप इंग्लैंड चले गये और वहाँ से १९८३ में डी. एस-सी. की प्रशस्त उपाधि प्राप्त की। आपकी गम्भीर गवेषणा और

पांडित्यपूर्ण इतिहास-पटुता, के साथ ही तर्क-पुष्ट आलोचना और योग्यता-पूर्ण विषय-विवेचना की लंडन विश्व-विद्यालय के प्रख्यात इतिहास तथा राजनीति के विशेषज्ञों ने ख़ूब प्रशंसा की है।

त्रिपाठी जी न केवल इतिहास के ही आचार्य हैं वरन् हिन्दी-साहित्य के भी पूर्ण पंडित हैं। साथ ही संस्कृत, फारसी और उर्दू के भी अच्छे ज्ञाता हैं। आपका अध्ययन बहुत विशद, गूढ़ और गम्भीर है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता का आपको पुष्कल ज्ञान है।

ब्रजभाषा के आप परम प्रेमी हैं तथा आपका काव्य गम्भीर और उच्चकोटि का है। आपकी पदावली भाव-प्रभाव-पूर्ण और मंजुल मृदुता-मयी रहती है तथा काव्य-विकास सर्वथा संयत सरस और सुललित है।

आपने केवल मुक्तक काव्य ही लिखा है जो अभी अप्रकाशित है।

मुक्तक-माला

एकहि सुदामा पाइ आजु लौं सुदामा रहे,
अब तौ सुदामन की भीरे भरि आई है,
भाग सौं अभाग सौं हमारे कै तिहारे नाथ!
नाम के कमाइबे की ऐसी घरि आई है;
चाटुकारिता की चाह इन सौं न राखौ रंच,
चाउर न लाई चाब उर धरि आई है,
चूके तौ चुकै गी चारुताई, चतुराई सबै,
सूखै गी तिहारी जेती हरि हरि आई है।

दिपति दिगन्त लौं दिपाली दसनावलि की,
बिपति-घनालिन की दुरति दर्‌यो करै;
विधिकृत कारन को, विबिध बिकारन कौ,
निरिविधि मकारन कौ कनक कर्‌यो करै;

हूलति हिये की हौंस हेरि-फेरि कहौं हरि,
हाँसी की हिलोर सौं पराभव हर्यो करै,
दनुज-बिदारिबे कौ, मनुज उबारिबे कौ,
नै कै बसुधा मैं सुधा-धार ह्वै भर्यो करै।

एक-बसना के लागि, बीर-बसना कौ त्यागि,
धीर तजि मानौ चीर-रूप ही धरे रहौ;
बाल-काल ही सों चीर चोरिबे की चाह तुम्हैं,
देखि चीर-धारिन कौ चाव सौं दुरे रहौ;
चकित जलासय मैं अति बिकलासय कौ,
जानत न आसै करतूति यों करे रहौ;
बसन निहारौ, यह व्यसन तिहारौ अब,
बस न हमारौ, सब बसन हरे रहौ।

अब तौ तिहारे संग खेलिवौ न भावे रंग,
तुम कौं न काम-धाम, हौं तौ काम वारो हौं;
तुम तौ छबीले छैल गैल-गैल मारे फिरौ,
नाम सौं तुम्हैं न काम, हौं तौ नाम वारो हौं;
तुम तौ लता लौं लहरात, छहरात रहौ,
या ही सौं अदाम सदा, हौं तौ दाम वारो हौं;
कारे रंग वारे कामरी सौं सुख वारे रहौ,
छाँह छिति धारे रहौ, हौं तौ धाम वारो हौं।

जकि-थकि सोचै एक पथिक बिचारो, धिक,
जीवन हमारौ मोंहि दिग-भ्रम भारी है;
लिखि-लिखि हारो रोय, रचि-पचि हारो खोय,
बकि-झखि हारो नहिं मिलति बजारी है;

कोऊ करै केतो पुरुषारथ अकारथ है,
जौलौं रत-स्वारथ है, बिरत दुखारी है;
प्रेम हरियारी जित, छेम की बयारी नित,
नेम की उजारी चल नचत मुरारी है।

खेलिबो तिहारो कर्म, खेलिबो हमारो धर्म,
तुम गतिधारे, हम हूँ तौ गतिवारी हैं;
अंग ना कहावौ तुम, अंगना कहावैं हम,
तुम पतिवारे, हम हूँ तो पतिवारी हैं;
रूप-रस-वारे तुम, रूप-रसवारी हम;
मोह-मद-वारे, हम मोह-मद-वारी हैं;
प्रेम-मतवारे तुम, प्रेम-मतवारी, हम,
काम रति वारे, हम काम-रतिवारी हैं।

कैसी किन गारी चिनगारी हरि होरी माँहिं,
नैकहू सिराति नाहिं बाढ़ति नितै-नितै;
जानत उपाय कोर, जानत न पाय खोर,
जाति पिचकारी है हमारी हू रितै-रितै!
आप हू तौ भक्ति-रस-रंग-पिचकारी डारि,
रक्त पिचकारी धारि धावत जितै-तितै;
हम तौ तिहारी बनवारी रीति जानैं नाहिं,
रहहिं प्रतीति के सहारे ही चितै-चितै।

जौलौं बंक भृकुटी, निसंक त्रिकुटी पै रेख,
तौलौं रेख-बिधि की खँचायै हू खँचैगी ना;
जौलौं प्रेम-पूतरी बिहारी ना तिहारी जुटी,
तौलौं प्रान-पूतरी नचायै हू नचैगी ना;

जौपै व्रज-बावरी भरैगी भाव-भाँवरी, तौ,
रावरीयौ कामरी बचाये हू बचैगी ना;
जोपै रास-रौन कहूँ राधा अवराधा तजी,
दूजी रास-मंडली रचाये हू रचैगी ना।

बंचक ! तिहारे फर-फन्द छर-छन्दन कौ,
सोचिबे-सुनाइबे को मन है, न बानी है;
बादर सौं रोइ-रोइ पाटि दीने सागर हैं,
छीन-हीन-दीन तऊ मीनन मैं पानी है;
कहाँ लौं सुनावैं हम, कहाँ लौं सुनौगे तुम,
यह अनुराग औ बिराग की कहानी है;
मोह-छोह-खानी, अनुरक्त-रक्त-सानी, ज्ञान-,
मान बिलगानी वा दुरन्त की निसानी है।

एक चूक ही की हूक ही कौ टूक-टूक करै,
लूक सौं लगै कलूक यौं कि उबरैंगे ना;
दरस तिहारे के सहारे जीय धारे रहैं,
धारे रहैं धीर, पीर धारे हू धरैंगे ना;
तौहू मुसकात, ना सकात, उसकात पीर,
सोचत न बीर ये तौ तीर लौं तरैंगे ना;
एक अभिलाष तौ सँभारैं ना सँभारी जात,
लाख अभिलाष कहू क्यौंहूँ सँभारैंगे ना।

जीवन कौ तार जो पै ऐसोई रहैगो तौ पै,
मेरो करतार तार एकहू रहैगो ना;
बेगि ही बढ़ावौ हाथ, अबहूँ गहौगे, न तौ,
फेरि का बढ़ाये, जब हाथ ही गहैगो ना;

दूरि ही दुरे हौ याहि कारन कहैगो कछु,
देखिबोई चाहै यह नैक हू कहैगो ना;
रावरी लुनाई-मधुराई को सहैगो कौन,
साँसनि-उसाँसनि कौ भार जो सहैगो ना।

कैसो यह मान, कैसी बान, अत्र आरत की,
एक हू पुकार कान्ह कान करते न क्यों ?
जिनके बचाइबे को चाव चित लाये वेई,
नैन भरि आये अब हाथ धरते न क्यों ?
दीनता-अधीनता सौं तापित अधोरन के,
आँसन-उसाँसन सौं नैकु डरते न क्यों ?
पार करिबे की कृपा करन न पावौ यदि,
रीतो जात पोत दया भार भरते न क्यों ?

ऐसी अँधियारी कारी रैन छलवारी महाँ,
माया लौं घनेरी जहाँ छाया भयकारिका;
देखैं घन-स्यामता मैं स्यामता तिहारी नाथ,
मारग दिखावै गहि तेरी नैन-तारिका;
मानव औ दानव के मौन रहिबे मौं कहा,
वाहि प्रेम-कारिका पढ़ाई सुक सारिका;
ज्यों-ज्यों भय-सागर मैं चढ़ति तरंग त्यों-त्यों,
बढ़ति उमंग संग तेरी अभिसारिका।

नभ की अनन्तताई विधि की गँभीरताई,
मन की चपलताई नैनन दुराई है;
उमा की सुघाई औ रमा की मधुराई मंजु,
चारु चतुराई सारदा हू की चुराई है;

इन की दया सों बसुधा पै सुधा-धार वहै,
इन की दया सों मया-प्रेम की दुहाई है;
इन ही पै लोककारी, लोकधारी, लोकहारी,
विधि-हरि-हर की सुसम्पति सुहाई है।

कोऊ कहै सालक हैं, कोऊ कहै घालक हैं,
कोऊ कहै पालक हैं जन के, जहान के;
जनम ते पायो इन्हें आजु लौं न देखि, लेखि,
पायो ओर-छोर इनके न गुन-मान के;
केते नाँध नाँधे औ उलांघे हू उपाय केते,
केते बाँध-बाँधे ज्ञान-ध्यान-अनुमान के;
तौ हू सौंह तेरी कहौं अजहूँ न बूझि पायो,
साधन हैं प्रान के, कि धन निरवान के।

ऐहो नेह-नागर तिहारे उर-अन्तर सों,
स्रोत जो सुधा को यों निरन्तर बह्यो करै;
तासों जड़ हू मैं जब जीवन की जोति जगै,
तब सौं सनेह को उदधि उमग्यो करै;
आस औ निरास की अमिति सैन साजि-साजि,
द्वन्द करिबे की निरद्वन्द उलह्यो करै;
रैन-दिन-डोरिन सौं फाँसि मन-मन्दर कौं,
सागर सनेह कौ गुनागर मथ्यो करै।

अजब अनौखे चोखे नैन नेह-सागर के,
छोभ-हीन हैं पै सबै रतन लुटावै हैं;
साजैं तिहुँ लोक पै बिराजैं इन्दु-लोक ही मैं,
बारिधि दुरावैं तऊ बारिज कहावै हैं;

आनि-कानि-पासन सौं साँसै औ सँभारै सबै,
तौ हू मन-मन्दर कौं सहठ मथावै हैं;
सुरन को मत्त, असुरन कौ अमत्त करैं,
मोहिनी को मोहि सिव बिष सौं रचावै हैं।

जाकी गुन-गरिमा मही मैं, ही मैं राजि रही,
साजि रही जाके हित प्रकृति सुसारी है;
जांके ज्ञान-जोग की चहूँघा चरचा है चारु,
जोगिन मैं अरचा है ऐसी छवि-न्यारी है;
वाको रूप देखिबे को, गुन अवरेखिबे को,
हौं हू गई जापै ब्रज-रानी बलिहारी है;
प्रेम-मूठि मारी, जौ लौं हिय कौ सँभार करौं,
तौ लौं तकि नैननि अबीर-मूठि मारी है।

गेरत सुरंगी पट आवै बहुरंगी रबि,
हेम - कर - कंज नख-छ्त कै जगावै है;
पूरषन के ऊषन प्रकास कौ परस पाइ,
सारे लोक-लोकन मैं प्रान फिरि आवै है;
तपि-तपि ज्यौं ही तपी साँसनि-उसाँसन सौं,
सारी बसुधा मैं तृषा-तोम उपजावै है;
सूठो से अकास मैं बिकास करै जीवन को,
मेह-बिन्दु-ब्याज नेह-बिन्दु बरसावै है।

ऊँची गिरि-चोटिन सों छूटि चली जा दिन सौं,
तादिन सौं चंचल चलाचल लगी रहै;
सीस धुनि पाहन पै. काँकरीली राहन पै,
छाती छिली जाति कुंज-कानन ठगी रहै;

ब्याकुल ह्वै धावै नित, नीची गति पावै तापै,
नारन-पनारन की कीचि सौं पगी रहै;
पावै छिन एक हू बिराम न अराम जौलौं,
त्यागि नाम-रूप ह्वै न सिन्धु की सगी रहै।

जादिन सौं निरखी छबि रावरी, बावरी बीथिन मैं बिहर्यो करै,
पीर लिये, हिय धीर किये, मुसक्याति, पै नैननि नीर झर्यो करै;
प्रान कौ मोह न मोहन-हेतु जियावति जीय उसाँस भर्यो करै,
नेह-बती लौं सनेह सती लौं, उजास करै तऊ आपु जर्यो करै।

नैन बुझाइ - बुझाइ थके, अनुराग की आगि बरोई करै,
कोटि निरास-कुठार चलै, तऊ प्रेम की बेलि फरोई करै;
नैननि नीर बह्यो करै पै, उर-अन्तर नेह भरोई करै,
मौन रहैं हिय हारि तऊ, रसना तव नाम ररोई करै।

सोवत औ सपने की कहा, जब जागत ही मति जाति हिरानी,
कासौं कहैं अरु कैसे कहैं, यह आपनी बात, न बात बिरानी;
बूड़ी रहै नित नीरधि मैं, बड़वागि बियोग की पै न सिरानी,
लावै न साँस-उसाँस हू पै, मन की लहरैं लहरैं न थिरानी।

ऊधौ कहा तुम सौं कहनो, तुम तौ इन बातन कौ नहिं जानौ,
आपु ही आपनी बात कहौ, तुम आप न आपने को पहिचानौ;
प्रेमिन के मन मैं, तन मैं, कन आपनपौ कौ न एकु थिरानौ,
नारिन की गति की, मति की, न अनारिन के मत मैं रहि मानौ।

रावरो रूप को सिन्धु अपार, सो नैन की नाव सौं पार तरैं क्यौं?
कोमल है बरुनी पतवार, सनेह कौ भार सँभार करैं क्यौं?
तापै अनेक हैं छेद छये, तौ निरास कौ नीर न तामैं भरैं क्यौं?
बूड़ि है पै यह जानत हैं, तऊ आइ परे अब कैसे टरैं क्यौं?

—मुक्तक-मंजूषा से

डाक्टर त्रिपाठी के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—मुक्तक-मंजूषा (अप्रकाशित)

श्री दुलारेलाल भार्गव

श्री दुलारेलाल जी का जन्म माघ शुक्ल ५, संवत् १९५२ में लखनऊ में हुआ। आपकी शिक्षा उर्दू से प्रारम्भ हुई; परन्तु आपने अपनी माताजी के प्रभाव से हिन्दी सीखी। इन्टरमीडियेट पास करने के बाद आपने नवलकिशोर प्रेस में काम करना शुरू कर दिया। आप न केवल सरस्वती के काव्यागार को ही सुशोभित करते हैं, वरन् कहना चाहिए, आपके द्वारा, उसके जराजीर्ण-ब्रज-काव्य-कलेवर में एक सुन्दर दोहावली की रचना से नवजीवन के संचार का भी प्रयत्न किया गया है। इस ग्रन्थ पर आपको 'देव-पुरस्कार' भी प्राप्त हुआ है।
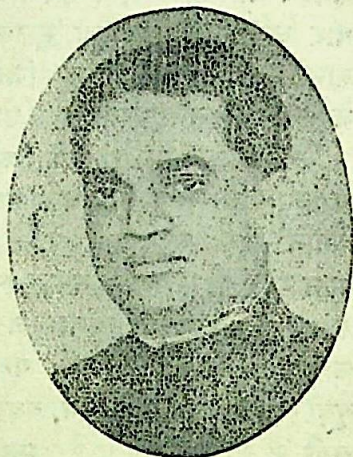
दुलारेलाल जी ने 'माधुरी' और 'सुधा' नाम की दो प्रख्यात पत्रिकाओं को जन्म देकर निखारा और बिसारा है। विशेषांकों के निकालने की परिपाटी को प्रचलित करने का श्रेय सम्भवतः आपको ही दिया जा सकता है।

ब्रजभाषा और ब्रजभाषा काव्य के आप अनन्य प्रेमी, नेमी तथा हितैषी हैं। आप में काव्य-कला कौशल की मर्मज्ञता सराहनीय है।

निवेदन

श्री राधा बाधा-हरनि, नेह अगाधा साथ,
निहचल नैन-निकुंज में, नचौ निरन्तर नाथ!
गुंज-हार गर, गुंज कर, बंसी कर हरि लेहु;
उर-निकुंज गुंजाय, मन-मोर-पुंज हरि लेहु।

अनु-अनु आपु प्रकास करि, करत अँधेरैं बास ;
उर-निकुंज तम-पुंज मम, रमिये रमा - निवास।
नीरस हिय तम-कूप मम, दोष-तिमिर विनसाय ;
रस-प्रकास भारति भरौ, प्यासौ मन छकि जाय।

सो०—मम तन तव रज-राज, तव तन मम रज-रज रमत ;
करि बिधि-हरि हर-काज, सतत सृजहु, पालहु, हरहु।

दोहावली-सार

सो०—गुरु-जन-लाज-लगाम, सखि, सिख-साँटो हू निदरि,
पेखत प्रिय-मुख-ठाम, टरत न टारे दृग-तुरग।
तेह-मेह मुख-नभ छयौ, चढ़यौ भौंह-सुर-चाप ;
आँसू-बूँद गिरे, दुरयौ, हास-हंस चुपचाप।

दमकति दरपन-दरप दरि, दीप-सिखा-दुति देह ;
वह दृढ़, इक दिसि दिपत, यह, मृदु-दस दिसनि सनेह।
हिममय परबत पर परति, दिनकर-प्रभा प्रभात ;
प्रकृति-परी के उर परयौ, हेम-हार लहरात।
ऊँच-जनम जन जे हरैं, नित नमि-नमि पर-पीर ;
गिरि-वर ते ढरि-ढरि धरनि, सींचत ज्यों नद-नीर।
सन्तत सहज सुभाव सों, सुजन सबै सनमानि,
सुधा-सरस सींचत स्रवन, सनी सनेह सुबानि।
भाव-भाप भरि, कलपना, कर मन-उदधि पसारि ;
कवि-रवि मुख-वन तें, जगहिं, गव रस देय सँवारि।
इड़ा-गंग, पिँगला-जमुन, सुखमन-सरसुति-संग ;
मिलत उठति बहु अरथमय, अनुपम सबद-तरंग।
विषय-वात मन-पोत कों, भव-नद देति बहाइ ;
पकरु नाम-पतवार दृढ़, तौ लगिहै तट आइ।

तचत बिरह-रबि उर-उदधि, उठत सघन दुख-मेह ;
नयन-गगन उमड़त घुमड़ि, बरसत सलिल अछेह।
नेह-नीर भरि-भरि नयन, उर पर ढरि-ढरि जात ;
टूटि-टूटि तारक गगन, गिरि पर गिरि-गिरि जात।
लखि अनेक सुन्दर सुमन, मन न नेक पतियाइ ;
अमल कमल ही पै मधुप, फिरि-फिरि फिरि मँड़राइ।
जग-नद में तेरी परी, देह-नाव मँझधार ;
मन-मलाह जो बस करै, निहचै उतरै पार।
माया-नींद भुलाइकैं. जीवन-सपन-सिहाइ ,
आतम-बोध बिहाइ, तैं, मैं-तैं, ही बरराइ।
तन-उपबन सहिहै कहा, बिछुरन-झंझा-बात ;
उड़यौ जात उर-तरु जबै, चलिबे ही की बात।
उर-धरकनि-धुनि माँहिं सुनि, पिय-पग-प्रतिधुनि कान ,
नस-नस तें नैननि उमहि, आये उतसुक प्रान।
हिय उलही पिय-आगमन, बिलखी दुलही देखि ;
सुख-नभ-दुख-धर-बीच छन, मन-त्रिसंकु-गति लेखि।
होत निरगुनी हू गुनी, बसे गुनी के पास ;
करत लुएँ खस-सलिलमय, सीतल, सुखद, सुबास।
गई रात, साथी चले, भई दीप-दुति मन्द ,
जोबन-मदिरा पी चुक्यौ, अजहुँ चेत मतिमन्द।
उत उगलत ज्वालामुखी, जब दुरबचननि-आग ,
उठत हियैं भू-कम्प इत, ढहत सुदृढ़ गढ़-राग।
बस न हमारौ बस करहु, बस न लेहु प्रिय लाज ;
बसन देहु ब्रज मैं हमैं, बसन देहु ब्रजराज।
पट, मुरली, माला, मुकट, धरि कटि, कर, उर, भाल ,
मन्द-मन्द हँसि बसि हिये, नन्द-दुलारे लाल।

हौं सखि सीसी आतसी, कहति साँच-ही-साँच ;
बिरह-आँच खाई इती, तऊ न आई आँच !
विन बिवेक यौं मन भयौ, ज्यौं बिन लंगर पोत ;
भ्रमत फिरत भव-सिन्धु में, छिन न कहूँ थिर होत ।
होयँ सयान अयान हू, जुरि गुनवान समीप ;
जगमग एक प्रदीप सों, जगत अनेक प्रदीप ।
दरसनीय सुनि देस वह, जँह दुति-ही-दुति होइ,
हौं बौरौ हेरन गयौ, बैठ्यौ निज दुति खोइ ।
एक जोति जग जगमगै, जीव-जीव के जीय,
बिजुरी-बिजुरी घर निकसि, ज्यों जारति पुर-दीय ।
स्याम-सुरँग-रँग-करन-कर, रग-रग रँगत उदोत ;
जगमग जग-मग जगमगत, डग डगमग नहिं होत ।
पैरत-पैरत हौं थक्यौ, भव-सागर के बीच ;
कबै पाइहौं देस वह, जहाँ न जनम, न मीच ।
बार बित्यौ लखि, बार झुकि, बार बिरह के बार ;
बार-बार सोचति-कितै, कीन्हीं बार लबार ?
गुंज-निकेतन-गुंज तें, मंजुल वंजुल-कुंज,
विहरैं कुंज-बिहारि तँह, प्रिय, प्रबीन, रस-पुंज ।
सतसंगति लघु-बंस हू, हरि अवगुन, गुन देति ;
केहि न कान्ह-अधरन-धरी, बंसी बस करि लेति ?
तू हेरत इत-उत फिरत, वह घट रह्यौ समाय ;
आगै खोवै आपनौं, मिलै आप ही आय ।
चंचल अंचल छलछलति, जिमि मुख-छवि अवदात ;
सित घन छनि-छनि झलमलति, तिमि दिन-मनि-दुति प्रात ।
राधा-वर अधरनि धरी, बाँसुरिया बौराइ,
प्रति पल पियत पियूष, पै, बिषम बिषहिं बरसाइ ।

जोबन - मकतब तौ अजब, करतब करत लखाय ;
पढ़े प्रेम - पोथी सुमति, पै मति मारी जाय ।
बसि ऊँचे कुल यों सुमन, मन इतरैए नाहिं ;
यह बिकास, दिन द्वैक कौ, मिलिहै माटी माहिं ।
कंचन होत खरो - खरो, लहैं आँच कौ संग ;
सुजनन पै त्यौं साँच तैं, चढ़त चौगुनौं रंग ।
चहूँ पास हेरत कहा, करि - करि जाप - प्रयास ?
जिय जाके साँची लगन, पिय वाके ही पास !
नन्द-नन्द सुख-कन्द कौ, मन्द हँसत मुख-चन्द ;
नसत दन्द - छल-छन्द - तम, जगत जगत आनन्द ।

(दुलारे दोहावली से)

श्री दुलारेलाल भार्गव के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—दुलारे दोहावली ।

डाक्टर रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ×

'रसाल' जी का जन्म चैत्र कृष्ण २ बुधवार, संवत् १९५५ में मऊ, ज़िला बाँदा में हुआ। आपके पिता पंडित कुंजबिहारीलाल जी बाँदे में हेडमास्टर थे।

'रसाल' जी ने संवत् १९८२ में प्रयाग-विश्व-विद्यालय से बी० ए० और १९८४ में एम० ए० पास किया। उसी वर्ष आप कान्यकुब्ज कालेज, लखनऊ में तर्क-शास्त्र और हिन्दी के प्रोफेसर नियुक्त हो गये; किन्तु वहाँ से फिर प्रयाग-विश्व-विद्यालय में अन्वेषण-कार्य के लिए आ गये। अब आप इसी विश्व-विद्यालय के हिन्दी-विभाग में अध्यापक हैं।
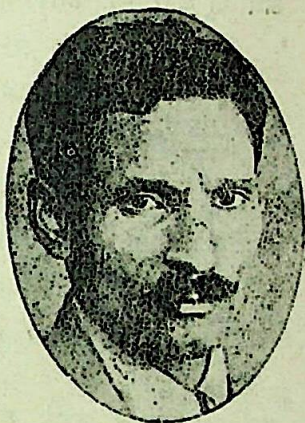
आपने काव्य-शास्त्र के विषय में एक गम्भीर गवेषणा-पूर्ण मौलिक तथा विवेचनात्मक ग्रन्थ लिखा, जिसके लिए आपको विश्व-विद्यालय की ओर से संवत् १९९५ में 'डा० ऑव लिट्रेचर' की उपाधि से सन्मानित किया गया। आप ही इस विश्व-विद्यालय के सर्व प्रथम हिन्दी के आचार्य (डाक्टर) हैं।

'रसाल' जी व्रज-भाषा-साहित्य के मर्मज्ञ विशेषज्ञ और साथ ही कुशल कवि भी हैं। आपका काव्य कलाकौशल-युक्त, गूढ़ तथा गम्भीर रहता है। वाक्य-विन्यास भाव-प्रभावपूर्ण, संयत और वैचित्र्यमय होता है। आपके शब्द-संगुम्फन में वर्ण-मैत्री और शब्द-मैत्री का अच्छा रूप आता

है। आपकी रचनाओं में वाग्वैचित्र्य के साथ चमत्कार की प्रधानता झलकती है।

'रसाल' जी सुयोग्य लेखक तथा मननशील आलोचक भी हैं।

—सुखदेव बिहारी मिश्र

उद्धव-गोपी-संवाद

ऊधौ जू कहौ तौ कैसो जोग कै कुजोग भयौ,
रोग भयौ, कैसे भये ऐसे आप जातें हैं ?
अलख लखात, ना लखात लख क्यौं हूँ तुम्हें,
हौ तौ गुनवारे तऊ बेगुन की बातें हैं;
दीखै आतमाकुल प्रकास आतमाकुल हूँ,
जगत के द्यौस, सो 'रसाल' तुम्हें रातें हैं;
बातै हैं तिहारी ये अनोखी भंग-रंग वारी,
रंग-भंग वारी कै तिहारी घनी घातें हैं।

मग न दिखात सूधौ, मगन दिखात ऊधौ,
मगन दिखात कीन्हें आपु ही मैं आपु कौ,
मानौ औ प्रमानौ और, जानौ-अनुमानौ और,
औरई बखानौ ना ठिकानौ कछू आप कौ;
ब्रह्म सबै जो पै, तौ 'रसाल' भेद-भाव कैसो,
कैसैं हमैं गोपी लखौ ऊधौ आपु आपु कौ ?
बोधौ आपु स्याम कौ, प्रबोधौ किधौं गोपिन कौ,
ब्रह्म कौ प्रबोधौ कै प्रबोधौ आप आपु कौ ?

कीजै तौ अजातरूप-बाद बाद जो पै इहाँ,
जातरूप-प्रेम कौ परेखिबौ बिचारौ है;
बिषम बियोगानल-आँच मैं तपाइ हम,
याकौ तौ सुनारी-रीति-नीति सौं निखारौ है,
सारि मुख-बात, जारि ब्रह्म-ज्ञाति हूँ 'रसाल',
तामैं ताइ-ताइ बृथा देखिबौ तिहारौ है;
देखौ कृष्ण-कठिन कसौटी लाइ ऊधौ ! कसि
खोटो-खरौ प्रेम-हेम जो है जो हमारौ है।

ऊधव ! बिचारैं हमैं आप कहा कामिनि ही,
हम जग-जामिनि की ज्योति ओप-ओपी हैं;
लख लख लीजिये हमारी प्रतिभा मैं आप,
अलख लखावैं कहा आतमा मैं लोपी हैं;
मानैं हैं महातमा महातमा तमा के आप,
आपनो महातम रहे क्यौं इत थोपी हैं;
ह्वै हैं आप जोई सोई आप अपने कौ रहैं,
गोपी रहैं गोपी, अपने कौं जब गोपी हैं।

स्याम पहिलैं तौ मोहि नीकैं मोहिनी कैं बल,
देह लै हमारी नीकैं नेह सौं सिझाई है;
उर लव लाइ त्यौं जगाइ अनुराग-आग,
आप दुरि दूर बड़ी बातनि बढ़ाई है;
सोई आग क्यौं हूँ नैन-नीर सौं न सीरी परै,
बात यौं बिचारि घात यौं 'रसाल' लाई है।
नेह-भरी पाती दै सँदेस-बात-बाती साथ,
ऊधौ ! ब्रह्म-ज्योति हाथ रावरे पठाई हैं।

करत कलोल लोल जीवन- तरंगिनी की,
उमँगी उमंगनि तरंगनि की माल मैं;
दै-दै चाव-चारौ यौं बिमोह्यौ कै न चारौ चल्यौ,
बहुत बिचारौ तऊ ऐसौ पर्यौ चाल मैं;
बेधि बेधि बंसी सौं 'रसाल' जिन्हें बंसीधर,
निज गुन खैंचि गये गेरि नेह-ताल में,
ऊधौ ! दुखी-दीनन कौं उन मन-मीनन कौं,
आये फाँसिबे कौं तुम बेगुन के जाल मैं

श्री हरि-सुदर्सन कौं सेइ-सेइ ऊधौ ! हमैं,
बान यौं परी कि बिना ताके दुख मानै हैं;
मोहन-बसीकर-प्रयोग चलि पावे बस,
मारन-उचाटन की भाँति हू न आनै हैं;
दूजे अस्त्र-सस्त्रन की चरचा चलावैं कहा,
भव के त्रिसूल हू कौं फूल करि जानै हैं;
हम ब्रज-बासिनी उदासिनी हैं ऐसे तब
हम पै बृथा ही ब्रह्म-अस्त्र आप तानै हैं।

दीखै जो सदाई दुखदाई हरि-द्रोहिन को,
प्रभु-पद-मोहिन को सुखद सहारो है;
सन्तत ही श्रीहरि-सुदर्सन हमारैं ऐसो—
रहत सबैई ओर छायो छबि-वारो है;
पुनि सुख-कन्द ब्रज-चन्द को पियूष पाइ,
अमर 'रसाल' भयो जीवन हमारो है;
तब तुम बार-बार हम पै चलावत जो,
ऊधौ ! ब्रह्म-अस्त्र बृथा हम पै तिहारो है।

उचित नहीं है मान हार तुम सौं जौ लेहिं,
अनुचित है जौ जयमाल पहिरावै हैं;
याही तैं बिवाद-बकबाद करि बाद सबै,
रमत 'रसाल' जामैं तामैं जो रमावै हैं;
कहि-सुनि लीनो, कहिबौ औ सुनिबौ जौ हुतो,
सूधौ अब ऊधौ ! यह कहि रहि जावै हैं;
आवैं तौ इहाँ वे भले आवैं कूबरी यै लै कै,
जो पै बिना कूबरी न क्यौंहू चलि पावै हैं।

रहत सदाई मुख-चन्द की जुन्हाई जुरी—
रंचक जहान को जहाँ न तम कारो है;
चलत चहूँघा बात सरस सुहाई जहाँ,
देखियै तहाँई हरियारी-सुख प्यारो है;
सिंचित सुनेह की सुधा सौं बसुधा है इहाँ,
ऊधव ! कहूँ न रंच रज को पसारो हैं;
कैसे रावरो तौ दुखवारो गहैं ज्ञान-पन्थ,
ऐसो सुखवारो प्रेम-पन्थ जौ हमारो है।

सूझत सुझाए ना बुझाए मन बूझत है,
ऊधव ! अरूझत है मोहन के मेले में;
बुधि बिसरानी त्यौं सिरानी सुधि ताकी सारी,
रंचउ थिरानी ना प्रपंच के दुहेले में;
ढरि अभिमान गयौ, सारो टरि मान गयौ,
गौरव-गुमान गयौ; गरि रज-रेले में;
सुचित नहीं है लखै उचित कहा धौं चित,
कुचित भयौ है चिदाचित के झमेले में।

मोहन-बिथा की कथा आपहू सुनावैं ऊधौ !
मोहन-बिथा की कथा हमहूँ सुनावैं हैं ;
हम ब्रज-चन्द बिना हैं परी महा तम मैं;
आपने महातम मैं आप अकुलावैं हैं ;
हम-तुम दोऊ एक, देखौ टुक टारि टेक,
अन्तर जौ नैक सो बिबेक कै बतावैं हैं ;
हम गुन गावैं निगुनी ह्वै सुगुनी के नीके,
आप गुनी ह्वै कै निगुनी के गुन गावैं हैं ।

जीवन असार को पसार अनुमानि-मानि,
मन मृग-बारि लौं बिचार को बिकार है ;
लैके ब्रह्म-ज्ञान को महान जलयान जामैं,
पन्थ के निबाह कौ बिबेक पतवार है ;
बेगुन कौ पाल लै बिसाल तानि तामैं तुम,
बड़ी-बड़ी बातनि कौ कीन्ह्यौ बिसतार है ;
यह भव-सिन्धु है न जाकौ पैरि पायो पार,
ऊधौ ! यह प्रेम कौ अपार पारावार है

अन्तर न व्यापै कछू ऐसियै निरन्तर ही;
लगन रहै है एक, प्रीति-जोगवारे हैं ;
देखिये 'रसाल' हाल है बिचित्र प्रेमिन कौ,
बार है, न तिथि है, ए अतिथि बिचारे हैं ;
ग्रह की कहा है औ उपग्रह कहा है जब,
निग्रह निखारे निज बिग्रह बिसारे हैं ;
चन्द सौं दुचन्द है अमन्द मुख-चन्द एक,
प्रेमिन के नभ मैं नछत्र हैं न तारे हैं ।

एक लव लाये त्यौं जगाये बस ज्योति एक,
एकै आन तेजो-रूप और लहते नहीं ;
राखै जौ सनेह-नेह करत उजेरो ताकौ,
रीतो नेह-पात्र लै कदापि रहते नहीं ;
जगत-महा तम कौ टारि सुमहातम सौं,
दोष हू महातमा तमा कौ गहते नहीं ;
दीपति है दीपति हमारी ही 'रसाल' हम,
प्रेम के प्रदीप बात तीखी सहते नहीं ।

बीति गये दिन प्रेम के वै, सजनी अब वै रजनी हू सिरानी,
और कथा भई ऊधव जू ! अब ह्वै गई औरै 'रसाल' कहानी;
नेह जर्‌यो बिरहानल मैं, परतीति रही अपनी न बिरानी,
बात रही न रह्यौ रस हूँ, तऊ मानस की लहरैं न थिरानी ।

जात समै उन्हैं दीन्हें हुते, मन प्रेम-पगे करि पाहन छाती,
लैहैं लिवाइ उन्हैं ये 'रसाल', बियोग-बिथा की कथा कहि ताती;
जात ही जात उहाँ उन दीन्हें, उन्हैं कुबजा-कर मैं करि थाती,
आनि अँदेसो इहै, दै सँदेसौ, पठैबौ परै अब ऊधव ! पाती ।

यह अवसर स्याम-कथा कौ मिलो, सो गयो रसना की रलारली मैं
कहिबे-सुनिबे की रही सो रही, इन बातन ही की बलाबली मैं;
मन-मीन मलीन मरे से परे, यहि ज्ञान की कोरी दलादली मैं,
मन-भावती हू कहि जाते कछू, अब ऊधव ! ऐसी चलाचली मैं ।

डाक्टर 'रसाल' के ग्रन्थ

१—इतिहास—१—हिन्दी साहित्य का इतिहास ।

२—साहित्यप्रकाश ।

३—साहित्य परिचय ।

२—काव्य-शास्त्र—१—अलंकार पीयूष, २ भाग ।

२—नाट्यनिर्णय ।

३—अलंकार-कौमुदी ।

३—आलोचना—१—आलोचनादर्श, २—गद्य-काव्यालोक ।

४—कोष—भाषा-शब्द-कोष ।

५—निबन्ध—रचना-विकास ।

६—काव्य—रसाल-मंजरी (अप्रकाशित)

श्री हरदयालुसिंह

आपका जन्म वैशाख संवत् १९५० में महमदाबाद (ज़िला सीतापुर) में श्री मातादीन साह के घर में हुआ। आपने सम्वत् १९७० में क्राइस्ट-चर्च कालेज कानपुर से इन्टर क्लास तक पढ़ कर छोड़ दिया। आपने संस्कृत साहित्य का भी अच्छा अध्ययन किया। सम्वत् १९७३ से आप कानपुर में काम करते रहे आर कई स्कूलों में अध्यापक भी रहे। इस समय आप झूसी ट्रेनिंग स्कूल में हैं। आप ब्रजभाषा में सुन्दर रचना करते हैं आर आपका 'दैत्य-वंश' नामक काव्य 'देव पुरस्कार' से सम्मानित हुआ है।
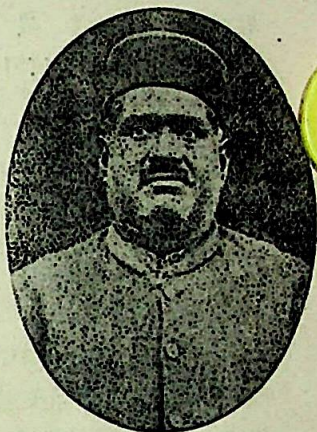
श्री हरदयालुसिंह की भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और चलती हुई है। आपकी रचना में स्वाभाविकता तथा सबलता रहती है। वर्णन-शैली रुचिर-रोचक है। काव्य-विन्यास सुसंगठित और संयत तथा शब्द-संगठन भी भावपूर्ण तथा सरस है।

आपने संस्कृत के नाटकों तथा कई काव्यों के हिन्दी अनुवाद किये हैं जिनमें से कुछ प्रकाशित हो चुके हैं और कुछ अप्रकाशित हैं।

१—समुद्र-मन्थन

निरखि दैतन कौ विभव मन माहिं अति अनखाय कै;
मिलि अखिल देव-समूह इक षड्यंत्र रच्यौ बनाय कै;
सब गये बलि नृप की सभा महँ बैर भाव भुलाय कै,
अरु, करन लागे मुदित मन [illegible] प्रीति दृढ़ाय कै।

खसि कह्यौ 'हम सब एक ही कुलमान्य की सन्तान हैं,
पै तुच्छ बातनि में परस्पर बैर करत महान हैं;
यहि बिकट बन्धु बिरोध कौ नहिं कछु सुखद परिनाम है,
अब यहै दीसत सुर-असुर कुल के बिधाता बाम है।'

'अबलौं भयो सो भयौ वाको सोच जनु कछु कीजिये,
बैरानुबन्ध भुलाइ कै सहयोग को ब्रत लीजिए;
जग बिजय को सम भाग आपुस माहिं समुद बटाइहैं,
मत-भेद ह्वैहै जो कहूँ तेहि सान्त ह्वै निपटाइहैं।'

इमि भाषि ससि भौ मौन,सुरगुरु समुद बलि दिसि देखि कै,
कह, 'सन्धि कीजै कलह तजि, गति समय की अवरेखि कै;
है संगठन सहयोग में ही, सक्ति यह गुनि लीजिए,
स्वीकार यात सक्र को प्रस्ताव भूपति कीजिए।'

इति सुनत सुर गुरु के बचन, कछु सुक्र मृदु मुसकाय कै,
अस कहन लागे बैन दैत्य, नरेस को समुझाय कै;
'नृप सुनिय सत उपदेश, इनको और फेरि बिचारिए,
फल अफल याकौ सोचि, पीछे कार्यक्रम निरधारिए।

सुनि सुक्र कै वर बैन बलि नृप तिनहिं सीस नवाइकै,
अरु कहन लाग्या बचन निज गुरुवरहिं इमि समुझाइकै।
'अभिलाष करि आये इतै, इनको निरास न कीजिए,
प्रस्ताव के अरधांस को स्वीकार ही करि लीजिए।'

इमि बैन सुनि वलिराज के जलराज गुरु रुख पाय कै,
यौं कहन लागे दैत्यनृप सौं बचन मृदु मुसकाय कै;
'है रहत कमला सिन्धु मैं अरु रत्न-रासि सबै यहाँ,
पै मथि अगाध समुद्र कौ कोउ तेहि सिकारै है नहीं।

"यातै हमारी मानि अब नृप सिन्धु को मथि डारिए,
गहि बाँह तेहि पितु-गेह सौं सह रत्नरासि निकारिए;
पुनि लाभ कौ समभाग हम सब बाँटिहैं सुख पाय कै,
अरु मेलकै रहि हैं सदा कुल-कलह कौ बिसराय कै।'

सुनि बरुन कौ प्रस्ताव कछुक बिचारि, मन्त्र दृढ़ाय कै,
स्वीकार कीन्ह्यों ताहि बलि हिय अमित मोद मढ़ाय कै;
जलनाथ ससि अरु अपर सुरगन हर्ष अति पावत भये,
अरु नाय बलि पद भाल सब मन मुदित सुरपुर कौ गये।

उत गुरुहिं दैत्य-नरेस आपु मनाय आयसु पाय कै,
निज सैन लैकै सिन्धु के तट रच्यौ सिबिर बनाइ कै;
इति सुरप लै दिक्पालगन अरु नागराज बुलाइकै,
तेहि सजग कीन्ह्यौ निज कुटिल प्रस्ताव को समुझायकै।

सुर असुरगन मिलि तबहिं मन्थर अचल लावन कौ गये,
पचि मरे पै नहिं अचल डोल्यौ दैत्य-बल कुंठित भये;
लखि तबहिं सबहिं निरास श्रीहरि बाम-बाहु लगायकै,
गहि ताहि बिनहिं प्रयास डार्यौ सिन्धु के मधि लायकै।

वह अनाधार अगाध अम्बुधि मैं लग्यो बूड़न जबै;
धरि प्रबल कच्छप रूप हरि निज पीठ पै राख्यौ तबै;
पुनि करि चतुर्भुज बपुष वापै आपु बैठे जायकै,
यहि भाँति दीन्ह्यौं सून्य नभ मैं रुचिर खम्भ बनायकै।

अभिलाष हरि कौ देखि तब हरि बासुकीहि बुलायकै,
कह "रज्जु तुम बनि जाहु सब मिलि मथैं सागर आयकै;"
सिर धारि सुरप अदेस मन्दर माँहि सो लिपटत भयो,
अमरेस सुरयुत आय ताकौ प्रथम ही आनन गह्यौ;

यह चाल कौ समझे बिना सब दैत्य अमित रिसायकै,
अहि सांस गहिबे काज तिनसौं लगे झगरन आयकै;
"ह्वै विमल-बंस-विभूति निज कुल गौरवहिं ख्वैहैं नहीं,
यहि नाग को अधमांग काहू भाँति हू छ्वैहैं नहीं।"

लखि सफल अपनी चाल तिनकी बुद्धि पै मुसकायकै,
सुर त्यागि वासुकि-सिर लगे सब पुच्छ की दिसि जायकै;
हरि प्रथम बल करि खैंचि निज दिसि बहुरि बलि खैंचत भये,
इमि पाँच बार फिराय मन्दर दोउ निज सिविरन गये।

सुर असुर दोउ मिलि मथन लागे अमित रोष बढ़ायकै,
सुनि करन जुर कारन रवहिं जलजन्तु चले परायकै,
लहि विकट भूधर की चपेटनि भगत ससि घबरायकै,
उछरत तिमिंगिल नक्र कौहूँ अमित चोटनि खायकै।

उठि विपुल तुंग तरंग नापन गगन कहँ मानौ चली,
कै परसि हरि पदकंज कौ यह करत मृदु बिनती भली;
है सम्पदा हू आपदा याको कठिन रच्छन महाँ,
परि खलन के पाले कहो अब याहि लै जावैं कहाँ।

इत सुमिरि सुरप अदेस वासुकि अमित रोष बढ़ायकै,
विष-ज्वाल लाग्यो तजन दैतन दिसि हिये अनखायकै;
जाते अनेकन दैत्यगन जरि छार तंहि ठौरहिं भये,
अरु सके जे विष झेलि ते कारे कलूटे ह्वै गये।

उत बाड़वागि प्रकोपि तावन तिनहिं तापन सौं लगी,
स्रम-हरन सीतल बात इत हिम-किरनि निकरनि सौं जगी;
उत तपत अहिम-मरीचि-माली ज्वाल जनु बरसायकै,
इत करत छाया जात घनगन सुमन जूह गिरायकै।

सहि अमित कष्टन दैत्यगन नहिं बासुकी आनन तज्यो,
अरु धीरता को देखि तिनकी हीय निज सुरगन लज्यो;
रहि सिविरि मैं, पढ़ि मन्त्र आहुति अग्नि मैं डारत रहे,
यहि भाँति तिनकी बिघन बाधा सुक्र सब टारत रहे।

उत विपुल भूधर की चपेटनि भयौ इत कौतुक नयो,
बहु तप्त तैल समान सागर कौ सलिल सब ह्वै गयो;
मरि गये बहु जल-जन्तु जिनके सव बहन पय पै लगे,
पुनि जरन लागे ज्वाल जनु अम्बुधि के ऊपर जगे।

सुर दैत्य मुरछित परे मन्दर खम्भ लौं ठाढ़्यो रह्यो,
लखि विषम हालाहलहिं तब हरि बिहँसि इमि हर सौं कह्यो;
"यह आपुकौ है भाग याते याहि प्रथम पचाइए,
सब जरे ज्वालनि जात इनकौ बेगि नाथ! बचाइए।"

सुनि वचन हरि के सम्भु हालाहलहिं निज कर मैं लियो,
अरु सुमिरि प्रभु पदकंज वाको पान हर्षित हिय कियौ;
"जै जैति-जैति कृपालु संकर!" असुर देवनि मिलि कह्यौ,
पुनि सपदि सागर मथन हित तिन आय वासुकि को गह्यौ।

पुनि कछु चपेटनि खाय ससि घबराय हाय डरायकै,
निज प्रान रच्छन काज जलपै आपु बैठ्यौ आयकै;
लखि कह्यौ संकर, 'याहि हम निज सीस हरखि बसायहैं;
यहि भाँति सौं विष ज्वाल मालनि चैन तौ कछुपायहैं।"

पुनि कल्पतरु, गज, बाजि, रम्भा, धेनु, धनु, ताते कढ़े,
सुरनाथ तिनकहँ लेन हित आनन्द सों आगे बढ़े;
हरि लियौ कौस्तुभ, संख; बारुनि कढ़न सागर सौं लगी,
तब ताहि लैबे काज कछु अभिलाष दैतनि उर जगी।

पै बरजि तिन कहँ कहत बलि, 'हम लेइहैं याकौ नहीं,
पर तियनि पै कहुँ दैत्य-वंस-नरेस दीठि न डारहीं;"
लै बारुनी वर कलस देवनि ओर बैठी जायकै,
अति रूप रासि निहारि ताकौ रहे सुर मुसकायकै।

तब कढ़ी कमला जासु के वर रूप कौ अवरेखिकै,
सुर असुर दोऊ चकित से रहि गये इकटक लेखिकै;
कह "सिन्धु देव अदेवगन महँ याहि जो मन भाइहै,
प्रातहि स्वयम्वर माहिं तेहि जयमाल या पहिराइहै।"

लै बारुनी अरु इन्दिरा को गयौ सो निज गेह को,
पुनि मथन लागे सिन्धु दोउ बिसराय के निज देह को;
कहुँ बिफल श्रम नहिं होत है यह बात हीय दृढ़ायकै,
अरु अधिक फल की आस पै विश्वास अमित बढ़ायकै।

पानि लै पीयूष घट तब आपु धन्वन्तरि कढ़े,
सुर ताहि लैबे काज प्रमुदित जबहिं वाकी दिसि बढ़े;
तब करकि कै बलि कह्यौ, 'वाही ठौर पै ठाढ़े रहौ,
जनि लखौ याकी ओर तुम पथ आपने गृह को गहौ।"

२—लक्ष्मी-स्वयम्बर

आजु है सिन्धुसुता को स्वयमूवर,
औ सुरवृन्दनि हू की अवाई;
या लगि मानौ महा मुद मानि,
दियो प्रकृती सुषमा बगराई;
वा समै मंचनि की अवलीनि पै,
ऐसी अनूप छटा कछु छाई;
मानो सुधाधर ने हरखाय,
दई बसुधा पै सुधा बरसाई।

तौ लगि आवन लागे विमान,
तहाँ असुरासुरवृन्दनि लै लै;
त्यौं परिचारकहू कर जोरि,
लगे तिन्हैं मंजु बतावन गैलै,
स्वागत द्वार पै ठाढ़ो ससी,
गहि के कर मंच लौ जात लै छैलै,
पाँव धरा पै जहाँइं धरै,
तहाँ चाँदनी चारु, चहूँ दिसि फैलै।

सम्भु, बिधाता, तथा हरि, सक्र,
जलेस, धनाधिप, नैरित, आये;
बायुसखा, जमराज, औ पौन,
बृहस्पति, मंगल, बुद्ध सुहाये,
त्यौं सनि सुक्र, तथा बलि, बासुकी,
बान, कुमार महा छबि छाये;
किन्नर, रच्छ, विद्याधर, यच्छ,
स्वयंवर देखन के हित धाये।

धारि दियो सिविका तिन लाय कै,
तासौं कढ़ी जलरासि दुलारी;
भूषन वेस बनाय भले,
तहाँ आय गईं सबै देवकुमारी,
लीने मयंकमुखी कर माल,
मराल की चाल लजाय पधारी;
लागी करावन देवन को,
परिचै वर बीन की धारनवारी।

"ये सबै नागन के अधिराज हैं,
सेष महेस को धन्य कहाये;
धारत हैं सिर दिव्य मनीन,
सबै बिधि संकर के मन भाये;
कंकन होत कबौं करके,
गुनि मानि पिनाक पै जात चढ़ाये;
औ इनही सौं कबौं कसि कै,
सिर के जटा जूट हैं जात बँधाये।

जानत हैं सिगरे जग मैं,
विष होत भुजंगम दाँत मैं धारो;
पै अधराधर कौ छत कै,
सो बिगारि सकै कछुहू न तुम्हारो;
लै कै पियूष कौ साज सबै,
चतुरानन ने निज हाथ सँवारो;
या लगि हीय मैं नैसुक संक,
करौ जनि मानि कै बैन हमारो।"

पै लहि सिन्धु-सुता को सँकेत,
लै भारती ताहि चली कछु आगे;
लाखनि लौं अभिलाखनि धारि,
मनोभव ताहि निहारन लागे,
देख्यौ जबै कमला हग फेरि कै,
भाग मनोज महीप के जागे;
ताको विसेष लखे अनुरागहिं,
सारदा बैन कहे रस पागे।

"है यह इन्द्र कौ आयुध मंजु,
औ लावनिता कौ अनूप अगार है;
त्यौं हरि संकर औ विधि के,
बृत को यह आपु डिगावनहार है;
धारै , प्रसून नराचनि पै,
जग कौन सहै यहि वीर की मार है;
कीजिए याहि कृतारथ तौ,
रति सी वर भामिनी को भरतार है।"

आगे बढ़ी जबै सिन्धु-सुता,
चलि बानी गई जहाँ बैठे पिनाकी;
रोकि तिन्हैं औ कछू मुसकाय कै,
भारती भौहैं भ्रमाय कै बाँकी,
बोली 'सुनौ कमला! जग मैं,
समता न करै कोऊ दान मैं याकी,
औ गुन औगुन याके दुऔ,
मति मेरी बिचारि-बिचार कै थाकी।'

'जाचकै देत है बिस्व बिभौ,
अपने तन पै गज-खाल सँवारत;
जोगिन मैं सब सो हैं बड़े,
पै तियाहि सदा अरधंग मैं धारत,
लीन्हें त्रिसूल रहैं कर मैं,
तऊ दासनि के भ्रम सूलनि टारत;
जारि हाँ देत सबै जग कौ,
जबै तीजो बिलोचन खोलि निहारत।'

'भाँग धतूरनि खात कितौ,
पै अभै हैं हलाहल आपु पचैकै;
हैं ही दिगम्बर, बाहन बैल,
मसान मैं डोलैं परेतनि लैकै;
जोरिहैं दिव्य दुकूल जबै,
गज-खाल सौं गाँठि सखीगन दैकै;
तौ परिहास करैंगी सबै,
अबला अनमेल बिवाह चितैकै।'

'ब्यालनि की लखिकै फुसकार;
कछू कमला निज हीय डरानी;
कीन्हों प्रनाम झुकाय सिरै,
चतुरानन के ढिँग सो नियरानी,
गावन कौं तिनके गुनगाथ कौं,
कीन्हों सकोच कछू मन बानी;
पै अपनो करतव्य विचारिकै,
बोली तिया सौं गिरा रससानी।'

"तीनहू लोक के ये करता,
अरु चारहू वेद बनावनवारे;
दाढ़ी भई सन-सी सिगरी,
सिर पै कहूँ केस न दीसत कारे,
नारद सौं इनके हैं सपूत,
तिहूँपुर ज्ञान सिखावनहारे;
प्रेम की पास मैं बाँधन कौं,
तुम्हैं बूढ़े बबा इत हैं पगु धारे।"

'मेलिकै कंठ मधूक की माल,
इन्हैं तुम आजु कृतारथ कीजियो;
औसर मंगल गावन काज,
हमैं निज वृद्ध बिवाह मैं दीजियो;
त्योंही बिनोद विहार निकौ,
इन सौं मिलिकै सिगरो रस लीजियो;
पै गृह-जीवन के सुख की,
तपसी घर में रहि साध न कीजियो।'

'गुन-गौरव-गाथा सखी इनकी,
हम पै कहू भाँति न जाति कही;
गईं बीति हमैं बरसैं कितनी,
इनके नहिं तर्क कौ पार लही;
यह कैतव-नीति के पंडित हैं,
समता इनकी जग आप यही;
पचिहारे किते तपसी तपकै,
बर देत हैं पै फल देत नहीं।'

बन्दि तिन्हैं मन मैं सकुचायकै,
सिन्धुजा आगे कछू पगुधारी;
कोटि मनोज लजावत जे,
पुरुषोत्तम पै निज दीठि कौ डारी;
ठाढ़ी जकी-सी छिनैक रही,
कर्तव्यहु कौ न सकी निरधारी;
या बिधि ताकी दसा अवलोकि,
कह्यौ इमि बीन को धारनवारी।

"आगे चलौ सखी देखैं बरैं,
परिचै इनकौ हम कैसे करावैं;
मो अबला की कहा गति है,
सहसानन हू कहि पार न पावैं;
जानैं कहाँ इनको गुन - गौरव,
बेद हू नेति ही नेति बतावैं;
बन्दत बूढ़े बबा इनके पग,
आपु महेसहु ध्यान लगावैं।"

सिन्धुजा कौ हरि मैं अनुराग,
लग्यौ त्यौं अदेवनि हीय जरावन;
बार न लागी तिन्हैं तनिकौ,
पल मैं हरि कौ बपु लागे बनावन;
औ यहि भाँति सबै मिलिकै,
कमला की तबै मति लागे भ्रमावन;
ता समै भोरी न जानि सकी,
चहियै जयमाल किन्हैं पहिरावन।

देखि तहाँ हरि बैठे अनेक,
लगे मुसकान कछूक त्रिलोचन;
त्यौं भ्रम मैं परि सिन्धु-सुता,
पहिराय सकी नहिं माल सकोचन;
वाकी लखे दयनीय दसाहिं,
लगे अपने मन मैं बलि सोचन;
जानि रहस्य सँकेतहि सौं,
नृप आपु निवारि दियो तिन पोचन।

देखि अचानक और की ओर,
सँकोचि मधूक की माल सँवारी ;
त्यौं दुऔ कम्पित हाथ उठाय,
दियौ पुरुषोत्तम के गर डारी ;
लाजन बोलि सकी न कछू,
कुस देह भई पै रोमंचित सारी ;
औ सखियानि कै संग समोद,
विनोद-भरी निज गेह सिधारी।

वा निसि सागर - नन्दिनी सौं,
हरि जू को भयौ तहँ मंजु बिबाहू;
आय सुरासुर दोऊ अनन्द सौं,
लीन्हौ सबै मिलि लोचन लाहू ;
व्यापि रह्यौ तिहू लोक के वासिन,
हीतल माँहि अमन्द उछाहू ;
सिन्धु ने कीन्हे किते सतकारति,
औ उपहार दियौ सब काहू।

श्री हरदयालुसिंह के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—दैत्य-वंश।

— —

पंडित रामचन्द्र शुक्ल 'सरस' +

'सरस' जी का जन्म ग्राम मऊ, ज़िला बाँदा में संवत् १९६० में हुआ। आप डाक्टर 'रसाल' के अनुज हैं। इन्टरमीडियेट तक शिक्षा प्राप्त कर आपने बोर्ड ऑव रेविन्यू में नौकरी कर ली और इस समय भी आप वहीं अच्छे पद पर हैं। आप पहले खड़ी बोली में रचना किया करते थे और उन रचनाओं का एक संग्रह 'सरस-संकलन' के नाम

इसके पश्चात् आपने ब्रजभाषा में 'अभिमन्यु-बध' नाम का एक सुन्दर खंडकाव्य लिखा, जिसमें से यहाँ कुछ पद संकलित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त आपने अलंकार-रस पिंगल आदि साहित्य के विविध अंगों की विवेचना-सम्बन्धी कई पुस्तकें भी लिखीं, जो विविध परीक्षाओं के लिए स्वीकृत हैं।

सरस जी की रचनाएँ सरस, समलंकृत और सजीव हैं। वाक्य-विन्यास सुव्यवस्थित, संयत और ओजादि गुण से पूर्ण रहता है।

अभिमन्यु-प्रयाण

रासि रस-राज की बिराजि रही मूरति पै,
मुद्रा मुख-हास कैं बिलास की ढरी परै,
'सरस' बखानै, करुना की छाँ कोयनि मैं,
लोयनि मैं लाली कढ़ता की उतरी परै;

बक्र भृकुटीनि मैं भयानकता भूरि भरी,
अद्भुत आभा सान्त-भाव सौं झरी परै;
उर उभरी सी परै वीर-रस कौ तरंग,
अंग प्रति अंग सौं उमंग उछरी परै।

पेखि उत्तरा कौं मौन, वोल्यौ अभिमन्यु बीर,
"कठिन समस्या एक एकाएक आई है;
उत अरुझे हैं पितु-मातुल हमारैं, इत—
व्यूह रचि द्रौन जीतिवे की घात लाई है;
जानत न ताकौ कोऊ भेद, खेद आनैं सवै,
हौं ही घात जानौं पितु गर्भ मैं सिखाई है;
यातैं वेगि दीजे विदा सारथ सपूती करौं,
ना तरु नसैहै सवै, जो बनी बनाई है।"

लखि निज-नाथ-नैन रक्त, वर वैन व्यक्त,
सुनि-गुनि बीर-बधू उत्तरा सकाई है,
त्यौं ही कर्न-द्रौन-दुरजोधन से जोधन की,
दारुन लराई चित्त चित्रित लखाई है;
देखि सौम्य-मूरति, बिसूरति त्यौं जुद्ध-दृस्य,
इत-उत हेरै सुधि-बुधि विकलाई है,
मंगल-अमंगल कैं परि असमंजस मैं,
हाँ न करि आई औ नहीं न करि पाई है।

बस धरि-धीर बीर नृपति बिराट-सुता,
पंच-दीप-आरती उतारनि जबै लगी;
'सरस' बखानै, पैठि बैठि उर-अन्तर मैं,
औरै कछू भारती उचारनि तबै लगी;

कम्पित सी ह्वै कै भई कम्पित सी दीप-सिखा ,
बाम ओर औचकि सधूम ह्वै दवै लगी ;
चकि, जकि, थहरि, थिरानी यौं अनैसी लेखि ,
देखि मुख, ध्यावन त्यौं सुरनि सबै लगी ।

अभिमन्यु-सारथी से

'एहो ! वीर-सारथी ! चलौ तौ "जै मुरारि" बोलि,
मोलि अब और रारि रंचक न लैहौं मैं ;'
'सरस' बखानै, 'त्यौं पुरानौ सबै लेखा लेखि,
दैहौं हाथ खोलि कछू बाद न करैहौं मैं ;'
'लोक कैं समच्छ लच्छ बाँधि-कोटि जोरि-जोरि,
धनु लै समूल चक्र-ब्याज-दरि दैहौं मैं ;
काल नियरायौ है, निधन करि बैरिन कौं ,
रिन कौं निबेरि त्यौं अबेरि ही चुकैहौं मैं ।'

'निज अभिमान, मान औ गुमान हूँ की हम ,
सूत जू ! अपूत छल-छूत की बखानैं ना ;
'सरस' कहै, त्यौं कुल-कानि-आनि ही की कहैं,
साँची कहैं ही की ही, सुभाव की प्रमानै ना ;
अतुल बली जौ तात-मातुल प्रचारैं क्रुद्ध ,
तौ हूँ जुद्ध जोरैं हम माख मन मानैं ना ,
द्रोन, कृप, कर्न, कृतवर्म, कुरु-राज कहा ,
हम जमराज के बवा सौं भीति आनैं ना ।'

पुनि अभिमन्यु कह्यौ, 'देखौ सूत ! बैरिन सौं ,
'त्राहि-त्राहि, पारथ-सपूत' यौं कढ़ैहौं मैं ,
'सरस' बखानै 'आजु देखत अखंडल कैं ,
बंस-महिमा सौं महि-मंडल मढ़ैहौं मैं ,

छाँटि भट-भीरनि कौं काल-कुंड पाटि-पाटि,
काटि-काटि मुंड मुंड-माली पै चढ़ैहौं मैं ;
तीरन कैं पिंजर मैं बमकत बीरनि कौं,
कीरनि लौं आनि राम-राम ही पढ़ैहौं मैं ;'

'खलबल भारी खल-बल मैं मचैगी जब,
बाननि की बिकट घनाली घिरि जायगी ;
'सरस' बखानै, यौं प्रमानै अभिमन्यु बीर,
रबि-रथहू की चाल परि थिरि जायगी ;
हलचल ह्वै है अचला मैं चलकारी इमि,
जातैं फनि-पति की फनाली फिरि जायगी ;
काया जुद्ध-भूमि माँहि यह गिरि जायगी कै,
आज धर्म-राज की दुहाई फिरि जायगी।'

करत मनोरथ यौं रथ पैं सुभद्रा-सुत,
बीर-रस कैसो अवतार नयौ साजै है ;
'सरस' बखानै, संग सैन सूर-बीरनि की,
ताकैं, ज्यौं बिभाव-भाव लै प्रभाव राजै है ;
आयो ढिग समर-थली कैं रथ माँहि बली,
चौंकि रिपु-सैन चली सोचि भानु आजै है।
लखि अभिमन्यु कौं जितै के ते तितै के रहे,
चकित चितै कै रहे सोचि, को बिराजै है।

पेखि अभिमन्युं कौं समन्यु कहै कोऊ यह,
गेय कार्तिकेय कौ अजेय अवतार है ;
मूरति बिलोक सौम्य 'सरस' प्रमानै कोऊ,
ओज-भरौ साँचौ यह मार सुकुमार है ;

गौरव विचारि कहै कोऊ यह कौरव कौ,
प्रगट्यौ पराभव भयकर अपार है;
कोऊ त्यौं बखानै, अभिमन्यु बेषु-धारी जिष्णु,
बिष्णु सेस-सायी बन्यौ पारथ-कुमार है।

कहत दुसासन सँभारि यौं उसाँसन कौ,
यह तौ त्रिबिक्रम कौ बिक्रम-बिसाल है;
'सरस बखानै, आय करन प्रमानै यह,
कै तौ जामदग्नि, अग्नि-देव कै कराल है?
सोचत जयद्रथ महद्रथ भयंकर है:
आयौ प्रलयंकर त्रिसूली महा काल है;
बोले द्रौन बिहँसि, हमारैं सिष्य पारथ कौ,
कौसल-कृतारथ लड़ैतो यह लाल है"

रणांगण में अभिमन्यु

पारथ कुमार! सुकुमार मार हूँ तें तुम,
'सरस' सलोनी बैस सोभा सरसाये हौ,
यह अनुहारि कौ "निहारि अनुमानैं हम,
मानैं मृगया कौं चलि भूलि इत आये हौ;
कहत जयद्रथ, "अयान यह जानै कहा,
तुम तौ सयान, सूत! यान किमि लाये हौ?"
निठुर युधिष्ठिर के आये धौं पठाये इत,
ठाये चित कैसो हित-अहित भुलाये हौ।"

नृपति जयद्रथ! महद्रथ गुमानी सुनौ,
बिनु छल-सानी यह जैसी-कछू भाखौं मैं;
'सरस' बखानै, यौं प्रमानैं अभिमन्यु आन,
ध्यान कै तिहारौ छल-छिद्र मन माखौं मैं;

जा मुख सौं बालक बताय हँसै ता मुख कौ,
कंदुक कै वीर-बाल ह्वैबौ अभिलाखौं मैं ;
जासौं किन्तु नीच मीच ! रावरी लिखी है ताही:
पूज्य पितु-बान हेत तेरौ सीस राखौं मैं।

सुनि कटु वैन यौं जयद्रथ रिसौंहैं हरि,
भौहैं फेरि दीन्ह्यौ बेगि हाथ धनु-सर मैं ;
'सरस' बखानै, कह्यौ, "मूरख न मानै जु पै,
जानैगौ हमैं तौ जबै जैहै जम-घर मैं ;"
याकौं कै सुनी औ असुनी सी उत्तरेस तौलौं,
ताकि तीर तमकि पँवारे हरबर मैं ;
दीख्यौ दाहिने मैं सिन्ध-राज कैं समूचौ धनु,
ऊँचो उठि आयौ किन्तु आधौ बाम कर मैं।

"ऐसी छुद्र-छोटी पुनि टूटी धनुहीं लै तुम,
रोपि रन-रुद्र श्री बिजै की लहिबौ चहौ;"
'सरस' बखानै, अभिमन्यु मुसकाय कह्यौ,
"जात हम द्वार सौं गहौ जौ गहिबौ चहौ ;
तजि मरजाद, सिन्धु-राज ! परि पाछैं पुनि,
आय बड़बागि सौं दहौ जौ दहिबौ चहौ ;
नातरु हमारी कृपा, रावरी त्रपा कौ भार,
टारन कौं सीस तैं रहौ जौ रहिबौ चहौ।"

"रहि-रहि धाय दीठि सब ओर जाय ठहि,
बहि-बहि ब्रह्म- अस्त्र लौं प्रबाह कर कौं ;"
'सरस' बखानै, अभिमन्यु यौं प्रमानै पुनि,
"जात मनौ ताहू मन्यु सौं सरीर भर कौं ;

कलमख वारौ, कटु, कारौ औ नकारौ कहूँ,
होतौ जौ न खारौ, अनिखारौ, दोषकर कौं,
तौ पुनि तिहारौ सिन्धु-राज ! आज जीवन लै,
देतौ अर्घ रुचि सौं रिझाय दिनकर कौं।"

राघव-समान हाथ-लाघव बिलोकि तासु,
सिन्धुराज चाहि और सराहि हियैं रहिगे;
'सरस' बखानै, धनु टूटे भये ऐसे त्रस्त,
अस्त्र-सस्त्र एक हूँ न क्यौं हूँ कर गहिगे,
राजनि की ओर हेरि लाजनि समाये जौ लौं;
भौचकि भुराये देखि कौतुक यौं ठहिगे;
तौ लौं उत्तरेस के अमोघ बर बाननि सौं,
चक्रव्यूह-द्वार के महान खम्भ ढहिगे।

स्यन्दन सुमित्र सूत हाँक्यौ कै विचित्र ढंग,
रिपु-दल देखि दंग ह्वै अति चकायौ है;
'सरस' बखानै, कर्न-द्रोन लौं प्रबुद्ध सुद्ध,
बीरनि हूँ माया-जुद्ध ताहि ठहरायौ है;
सकल चमू मैं चलै चक्र लौं चहूँघा चारु
कौंधि चंचला लौं नीठि दीठि चौंधियायौ है;
रंच न थिरात, जात मन कैं मनोरथ लौं।
एक ह्वै अनेक बीर व्यापक लखायौ है।

सुभट सुभद्रा-सुत बीरनि की भीरनि मैं,
चारौं ओर केसरी-किसोर लौं गराजै है;
'सरस' बखानै, देखि भीरि रिपु-बाननि की,
आनन पै ओप लै सचोप कोप भ्राजै है;

रंग बदरंग त्यौं बिपच्छिनि कौं दंग देखि,
रंग निज लेखि मन्द-हास मुख राजै है;
रौद्र-रस राँच्यौ त्यौं भयानक सौं माँच्यौ मनौ,
बीर-रस हास कैं बिलास मैं बिराजै है।

तमकि तपाक सौं सुभद्रा कौ लड़ैतो लाल,
लाल करि नैन सिंह-सावक लौं गाजै है;
'सरस' बखानै, ज्या-निनाद सौं दिसानि पूरि,
कंचन-कोदंड पै प्रचंड सर साजै है;
बान-झरि लाये मंडलीकृत सुचाप-बीच,
मंजु मुसुकात मुख-मंडल यौं राजै है;
सारत मयूख लौं मयूख रबि-मंडल पैं,
करत अमंगल ज्यौं मंगल बिराजै है।

परम तरंगी रन-रंगी पारथी है बीर,
तीखे-तीर आनि भट-भीरि छाँटि देत है;
करि प्रलयंकर, भयंकर सक्रुद्ध जुद्ध,
रुद्र लौं बरूथिनि समुद्र पाटि देत है।
'सरस' कहै, त्यौं बाल-प्रकृति-कुतुहल कै,
काहू कौं बिचारि डरपोक डाँटि देत है;
नासा-कान काहू कैं हँसी ही मैं निपाटि देत,
कौतुक सौं काहू की कलाई काटि देत है।

पावस मैं मंडल दिखात चन्द्रमा पैं जैसौ,
तैसौ मडलीकृत सरासन लखावै है;
हाथ पारथी को भाथ-भातर सिधावै कबै,
सायक निकास और बिकास कबै पावै है;

'सरस' बखानै, अनुमानै पै न जानै और,
मानै सुर-मंडल सौं तेज-तीर धावै है;
लेखन मैं आवै ना परेखन मैं आवै पुनि,
देखन मैं आवै ना निरेखन मैं आवै है।

कोपि अभिमन्यु रन-रोपि ज्यौं टँकोरयौ धनु,
काँपि उर चाँपि रहे सूर सरकस लौं;
'सरस' बखानै, यौं सँधाने बीर-तीर-भीर,
रूँधि रन-धीर भये कीर परबस लौं;
तोलन न पावैं धनु, खोलन न पावैं मुख,
सनमुख बोलन न पावैं करकस लौं;
देखत ही देखत बनावै बीर बानिन सौं,
आननि रिपूनि कैं खुले पैं तरकस लौं।

कौसल-धनी लौं अभिमन्यु-रनी-कौसल यौं,
देखि गुरु द्रौन सौं सराहि चाहतै बन्यौ;
'सरस' बखानै, उमगान्यौ इमि छोह-मोह,
द्रोह-काह टारि प्रेम-वारि बहतै बन्यौ,
दूरि दुरै द्वेष-दुराभाव, त्रपा कौ प्रभाव,
साँचौ कृपा-भाव कौ स्वाभाव गहतै बन्यौ;
पारथ पिता है धन्य! ऐसे सुत-सारथ कौ,
पारथ-गुरू है धन्य! हौ हूँ कहतै बन्यौ।

जीतै शत्रु-पच्छ सिष्य-वारौ कै हमारौ पच्छ,
जीति रन-दच्छ-द्रौन ही कैं दुहूँ कर मैं;
गुरु की कहा है कुरु-राज कहै जोधनि सौं,
सिष्य-सुत जीतैं जस दूनौ जग भर मैं;

'सरस' बखानै, गुनी-गनक प्रमानैं यहै,
मानै हम सोई लेखि लीला यौं समर मैं;
जापैं दीठि देत नीठि ताकी तौ करै समृद्धि,
बृद्धि ना करै है गुरु बैठै जाहि घर मैं।

"सम्मुख भई है दुःखदायी जोगिनी धौं आजु,
होतौ न तौ ऐसौ एक बालक सौं हारैं हम;
'सरस' सुनावैं, यौं बतावैं बीर लै उसाँस,
बड़े-बड़े आँस यौं लहू कैं हाय! ढारैं हम;
सक्र के बिजेता द्रोन, कर्न, आपु अक्र भये,
बक्र बिधि ह्वै गये हमारैं धौं बिचारैं हम;
बादि ही हमैं तौ कुरुराज! यौं धिकारैं आपु,
आपै आपु आपने कौं आपु ही धिकारैं हम।"

धाक अभिमन्यु की धँसी यौं, बसी ऐसी हाँक,
आँक न दिखात, परे ब्यौंत बिथराने से;
'सरस' बखानै, कुरुराज कैं कढ़ैं न बैन,
नैनहूँ चढ़ैं न बढ़ैं बाहु बिथकाने से।
हिम्मति-हुलास हियैं हुमसि हिराने सबै,
उकसि उराने रोष-दोषहूँ सिराने से;
ऐसी भीति-भावना समाई रग-रग माँहि,
डगमग जाँहि पग, मग मैं थिराने से।

जात दुरि जोधन मैं काह दुरजोधन! तू,
तोसौं बैर-साधन कैं हेतु लरिबौ चहौं;"
'सरस' बखानै, यौं प्रमानै उत्तरेस बीर,
दाव-द्रौपदी की दाह-दुःख-दरिबौ चहौं;

देखत अनी के नीके चंडिका कैं खप्पर मैं,
स्रोनित तिहारौ आनि भूरि भरिबौ चहौं;
पूज्यबर भीम की तिहारी जाँच तोरिबे की,
तोरि कै प्रतिज्ञा न अवज्ञा करिबौ चहौं।"

"आवौ बान-पथ पैं न रथ पैं, लुकाने जाव,
एक तुम कारन हौ यह रन-रारि कैं;
जेहि बल भूलि, प्रतिकूल ह्वै रहे हौ फूलि,
तूल लौं उड़ैहौं ताहि देखत तमारि कैं;"
'सरस' बखानै, "हम बचन प्रमानैं आजु,
बचन बचाये हूँ न पैहौ त्रिपुरारि कैं;
मरन निवारौ चहौ करन! हमारी तब,
सरन लहौ औ गहौ चरन मुरारि कैं।

अनुमति मानि आनि सोई मति कर्न बीर,
तीखे तीर तीसक सरासन पैं साजे हैं;
'सरस' बखानै, अनजानै पारथी कौ धनु,
काटि हूँ महारथी कहावत न लाजे हैं;
छिन्न बिसिखासन कैं लीन्हैं जुग भाग भिन्न,
पारथ-कुमार यौं घरीक लौं बिराजे हैं;
मंडित-प्रताप सम्भु-चाप करि खंडित ज्यौं,
खंड-जुग लीन्हैं रामचन्द्र छबि छाजे हैं।

आई बीर-पानि मैं मियान सौं कृपानि कढ़ी,
पानी-चढ़ी बाढ़ सौं प्रगाढ़ गढ़ी ढावै है;
"सरस' बखानै, त्यौं बिपच्छिछनि कौं पच्छिनि लौं,
लपकि लपालप खपाखप खपावै है;

सक्र-असनी लौं चक्र-व्यूह की अनी लौं घूमि,
चूमि-चूमि भूमि पुनि व्यौम कौं सिधावै है;
रिपु-बल-साली सैन-सघन-घनाली माँहि,
खेल चंचला लौं चारु चमक दिखावै है।

कढ़त मियान-गर्त-सौं सुदामिनी लौं कौंधि,
चख चकचौंधि चलै यौं प्रभानि पागी है;
'सरस' पढ़ै त्यौं बढ़ै लपकि प्रभंजन मैं,
पाय रिपु-प्रान-पौन और जोर जागी है;
जीवन उड़ाय ताप-जीवन-विलासिनि कौ,
दलदल हूँ कौं छारिबै मैं अनुरागी है;
पानीदार पारथ-सपूत की कृपानी-गत,
पानीदार-धार मैं विलीन बड़भागी है।

टूटे अस्त्र-सस्त्र देखि छूटे अवसान जबै,
त्रस्त ह्वै कछूक अभिमन्यु अकुलायौ है;
'सरस' बखानै, त्यौं प्रपंचिनि-प्रपंच लेखि,
पेखि भरि बानन की आनन उठायौ है;
कहि कटु बैन, नैकु नैन-मुख बक्र करि,
अक्र करि सैन, रथ-चक्र गहि धायौ है;
सक्र-मदहारी चक्र-धारी ह्वै सक्रुद्ध मानौ,
भीष्म-जुद्ध-दृस्य आय फेरि दुहरायौ है।

लीन्ह्यौ खेत भारी कुरु-नाथ सौं अकेलैं जाय,
मन कौ कियौ है धाय-धाय हल-बल तैं;
'सरस' बखानै, अरि-हर सर सौं बखेरि,
हेरि अन्तराय कौं निकाय हर्‌यौ तल तैं;
सींचि निज सर तैं निकासे पुनि जीवन सौं,
टारी अरि-ईति-भीति सारी बाहु-बल तैं;
काटि-काटि फूले-फरे बिरवा सुकीरति कैं,
रासि कै सुभद्रानन्द सोयौ परि कल तैं।

———
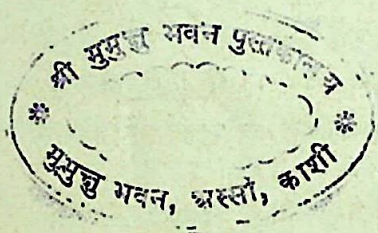
परिचय

१—श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेम घन,' मिरजापुर
 (जन्म सं० १६१२-निधन सं० १६७६)

२—पंडित श्रीधर पाठक, पद्मकोट, प्रयाग
 (जन्म सं० १६१६-निधन सं० १६८५)

३—पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', आज़मगढ़
 (जन्म सं० १६२२)

४—श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर', राजमहल, अयोध्या
 (जन्म सं० १६२३-निधन सं० १६८६)

५—लाला भगवानदीन 'दीन', काशी
 (जन्म सं० १६२३-निधन सं० १६८७)

६—रायदेवीप्रासाद 'पूर्ण', कानपुर
 (जन्म सं० १६२५ निधान सं० १६७२)

७—पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न', धाँधूपुरा आगरा
 (जग्म सं० १६४१-निधन सं० १६७५)

८—श्री वियोगी हरि, हरिजन आश्रम, देहली
 (जन्म सं० १६)

९—रावराजा डाक्टर, श्यामबिहारी मिश्र, लखनऊ
 (जन्म सं० १६३०)
 रायबहादुर शुकदेव विहारी मिश्र, लखनऊ
 (जन्म सं० १६३५)

१०—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, विश्व-विद्यालय, प्रयाग
 (जन्म सं० १६४६)

११—श्री दुलारेलाल भार्गव, लखनऊ
 (जन्म सं० १६४६)

१२—डाक्टर रामशंकर शुक्ल 'रसाल', विश्व-विद्यालय, प्रयाग
 (जन्म सं० १६५५)

१३—श्री हरदयालुसिंह, झूसी, प्रयाग
 (जन्म सं० १९५३)

१४—पंडित रामचन्द्र शुक्ल 'सरस', नया कटरा, इलाहाबाद
 (जन्म सं० १९६०)

इस संग्रह में निम्न-लिखित काव्य-ग्रन्थों से अवतरण लिये गये हैं

प्रेमघन सर्वस्व—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
काश्मीर सुषमा—राय साहब, रामदयाल अगरवाल कटरा, प्रयाग।
रस कलस—खड्ग-विलास प्रेस, बांकीपुर।
रत्नाकर—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
ऊधव शतक—रसिक-मंडल, प्रयाग।
पूर्ण-संग्रह—गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ।
हृदय-तरंग—नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा।
वीर-सतसई—साहित्य-प्रेस, प्रयाग।
मुक्तक-मंजूषा—अप्रकाशित।
दुलारे दोहावली—गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ।
रसाल-मंजरी—अप्रकाशित।
दैत्य-वंश—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद।
अभिमन्यु-वध—राय साहब, राम दयाल अगरवाल कटरा, प्रयाग।